आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

जुलाई 2025

क्रान्ति

मासिक

सहयोग राशि
30/- ₹



शाकाहार की सियासत और मांसाहार की सार्थकता

“फिर तुम वही हो कि अपने लोगों की हत्या करते हो और अपने ही एक गरोह के लोगों को उनकी बस्तियों से निकालते हो; तुम गुनाह और ज़्यादती के साथ उनके विरुद्ध एक-दूसरे के पृष्ठपोषक बन जाते हो; और यदि वे बन्दी बनकर तुम्हारे पास आते हैं, तो उनकी रिहाई के लिए अर्थदंड का लेन-देन करते हो जबकि उनको उनके घरों से निकालना ही तुम पर हराम था, तो क्या तुम किताब के एक हिस्से को मानते हो और एक को नहीं मानते? फिर तुममें जो ऐसा करें उनका बदला इसके सिवा और क्या हो सकता है कि सांसारिक जीवन में अपमान हो? और क़ियामत के दिन ऐसे लोगों को कठोर से कठोर यातना की ओर फेर दिया जाएगा। अल्लाह उससे बे-ख़बर नहीं है जो कुछ तुम कर रहे हो।”

(क़ुरआन, 2:85)

Website Link :
www.kantimasik.com

संपादक
शिब्ली अरसलान
abuaniqa@gmail.com

प्रबंधक
नईम ख़ान
+91 9891160829

सहयोग राशि
एक प्रति 30/- रु॰ एक वर्ष 350/- रु॰
पांच वर्ष 1500/- रु॰ आजीवन रु॰ 5000/-
सऊदी अरब और खाड़ी के देशों के लिए 110/- रियाल
यूरोप व अमेरिका के लिए 40/- US डॉलर

ख़रीदार बनने, एजेंसी लेने, प्रचार-प्रसार एवं प्रबंधकीय मामलों के लिए सम्पर्क करें :

कार्यालय :
कान्ति मासिक, डी-314, दावत नगर,
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर,
ओखला, नई दिल्ली-110025

हेल्पलाइन न॰
9818799223

Account Detail
NAME : KANTI
A/C NO : 0990839195
IFS CODE : IDIB000J029
TYPE : CURRENT
BANK : INDIAN BANK
BRANCH : JAMIA MILLIA ISLAMIA
NEW DELHI - 110025
चेक / ड्राफ्ट 'कान्ति' के नाम से बनवाएं

प्रकाशक मुहम्मद अहमद द्वारा दावत ट्रस्ट (रजि॰), डी-314 दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025 से प्रकाशित एवं
Printer : Akhilesh Singh
Press : AARYA PRINTERS
201, Ground Floor, DSIDC Complex
Okhla Industrial Area phase-1,
New Delhi-110020
Editor : Shibli Arsalan

संस्था की लिखित अनुमति के बिना सम्पूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित है।

वर्ष 35 अंक 01 जुलाई 2025

आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब



कान्ति मासिक

इस अंक में

मूल प्रश्न 04
युद्ध के माहौल में सत्य की पक्षधरता
शिब्ली अरसलान

चिंतन 07
"सत्य एक, संकेत अनेक"
रिज़वान अहमद

सौंदर्य बोध 11
नैतिकता की मूल आत्मा
तबाना नूरी

मुख्य स्तंभ 15
शाकाहार की सियासत और मांसाहार की सार्थकता
सुफ़ियान अहमद

विशेष आयोजन 18
शाकाहारी वर्चस्ववाद की राजनीति का प्रतिरोध
सलमान अहमद

कविता 25
इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है
दुष्यंत कुमार

मंथन 26
एक बीमारी की दूरी पर खड़ी है बर्बादी
डॉ.प्रदीप कुमार

पर्यावरण 29
विज्ञान, समाज और शासन : तीनों की साझी ज़िम्मेदारी
जितेंद्र गौतम

दृष्टिकोण 32
संघर्ष की समझ
अबरार हसन

प्रकाश स्तंभ 35
ज़िन्दगी कोई बेमतलब सफ़र नहीं
अहमद शब्बीर अली

सेहत 38
सुस्ती का रोग
संपादन प्रभाग

करियर 40
फ़ार्मा क्षेत्र में करियर के बढ़ते अवसर
संपादन प्रभाग

कहानी 43
हमारी सोच
विनोद महर्षि 'अप्रिय'

शिक्षा जगत 45
परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सशक्त संतुलन के पक्षधर
अभय कुमार

लघुकथा 48
"डिजिटल ख़सरा संख्या 302/9"
सुफ़ियान अहमद

आख़िरी पन्ना 49
ज्ञान और मार्गदर्शन का अंतिम संदेश
सायेमा हुसैन

मूल प्रश्न



शिब्ली अरसलान

युद्ध के माहौल में सत्य की पक्षधरता

इन पंक्तियों के लिखने तक इज़राईल-ईरान युद्ध ज़ोर पकड़ चुका है। आज युद्ध का तीसरा दिन है, 14 जून को इज़राईल ने ईरान के कई अहम ठिकानों पर ये कहते हुए सर्जिकल स्ट्राइक नहीं बल्कि फुल-स्केल वार जैसी शुरुआत कर दी थी कि ईरान परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम पर आगे बढ़ता जा रहा है जो इज़राईल के अस्तित्व के लिए ख़तरा है। ये स्पष्ट रहे कि अमेरिका की परमाणु मुद्दे पर ईरान के साथ बात-चीत हो रही थी और एक अधिकारिक बैठक भी तय थी। इज़राईल किसी भी स्वतंत्र क्षेत्र पर हमले के पीछे "आत्म-रक्षा" का तर्क और जस्टिफिकेशन पेश करता रहा है और अपनी 'रक्षा' के लिए अमेरिका की सहमति और पूर्वानुमती से मध्य-पूर्व में कुछ भी करने के लिए तैयार रहता है। मध्य-पूर्व का एक तरह से दादा बना फिरता है, दुर्भाग्यवश आस-पास के सारे अरब राष्ट्र उसे दादा के तौर पर तस्लीम भी करते हैं। उसे किसी देश की संप्रभुता और स्वतंत्रता को चुनौती देने में कोई संकोच नहीं है। अमेरिका ने इज़राईल द्वारा ईरान पर हमले के फ़ौरन बाद पहले तो ये बयान जारी किया कि वो इसमें शामिल नहीं है, फिर पूर्व सूचना की बात क़ुबूल की और यह भी कह दिया "Israel is right and Israel has a right". यानी स्थिति स्पष्ट है कि इस युद्ध के पीछे अमेरिका है।

भारत की ये भी बदक़िस्मती है कि यहां अब भी इज़राईल के ज़ायनवाद और बदतरीन नस्लवाद के समर्थक पाए जाते हैं। कौन नहीं जानता कि इज़राईल कोई देश नहीं, बल्कि फ़िलिस्तीन की धरती पर नाजाएज़ क़ब्ज़ा करके बनाया गया मध्य-पूर्व में अमेरिकी फ़ौजी-अड्डा या दुनिया के स्वघोषित थानेदार की 'पुलिस चौकी' है।

सोशल मीडिया के इस दौर में ऐसा लगता है कि हर व्यक्ति इज़राईल-ईरान युद्ध पर बातें कर रहा है और युद्ध के बहाने से न्याय की अवधारणा, मानवता, सर्व-समेटु पश्चिमी साम्राज्यवाद और दुनिया के भविष्य पर भी बातें हो रही हैं। ये एक अच्छी बात है।

हम ये उम्मीद करते हैं और हर भले इंसान की यही कामना होगी कि ये जंग लम्बी ना चले। यदि इज़राईल की पुश्त पर अमेरिका है तो ईरान अकेले बड़ी सैन्य ताक़त है, फिर चीन और रूस का समर्थन भी उसे प्राप्त होगा। फिर जिस तरह ईरान ने इज़राईल के ख़िलाफ़ मुहतोड़ जवाबी कार्रवाई शुरू कर दी है और इज़राईल के स्वघोषित शक्तिशाली सुरक्षा कवच "आयरॉन डोम सिस्टम" को महज़ "सायरन डोम सिस्टम" बना दिया है, इससे मध्य-पूर्व की स्थिति भयावह हो सकती है। पूरी दुनिया विशेष तौर पर एशिया के हम ग़रीब देशों पर इसके कुप्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता।

युद्ध और युद्धोन्माद के समय में जबकि झूठ और असत्य का सबसे अधिक प्रचार होता है, सत्य का वजूद बहुत सूक्ष्म हो जाता है, सत्य की तलाश और सत्य की पक्षधरता एवं प्रतिबद्धता सबसे बड़ी नैतिकता है। ये बहुत अच्छी बात है कि यद्यपि पश्चिमी बड़ी राजनीतिक शक्तियां इज़राईल के साथ खड़ी

हैं, सैन्य शक्ति में बेहद कमज़ोर और डरपोक अरब दुनिया मौन धारण की हुई है और भारत की वर्तमान हुकूमत और सत्ता-वर्ग किंकर्तव्यविमूढ़ है हालांकि मानवता, नैतिकता, सांस्कृतिक संबद्धता और पुरानी मित्रता का तक़ाज़ा ये है कि भारत ईरान के पक्ष में खड़ा हो, हां मगर दुनिया की पढ़ी-लिखी बहुत बड़ी आबादी, पश्चिम-पूर्व की विभाजन रेखा से परे मानवता के साथ खड़ी है, वो ग़ज़्ज़ा के आदमख़ोरों और फ़िलिस्तीन की धरती के लुटेरों के साथ हमदर्दी नहीं रखती।

भारत की ये भी बदक़िस्मती है कि यहां अब भी इज़राईल के ज़ायनवाद और बदतरीन नस्लवाद के समर्थक पाए जाते हैं। कौन नहीं जानता कि इज़राईल कोई देश नहीं, बल्कि फ़िलिस्तीन की धरती पर नाजाएज़ क़ब्ज़ा करके बनाया गया मध्य-पूर्व में अमेरिकी फ़ौजी-अड्डा या दुनिया के स्वघोषित थानेदार की 'पुलिस चौकी' है।

ये बात भी दुनिया के इतिहास-भूगोल को गहराई से पढ़ने वाले जानते हैं कि यहूदी विक्टिम कार्ड खेलकर,यहूदी राष्ट्र की आड़ में बनाया गया ये देश यहूदियों के अंदर यूरोपीय मूल रखने वाले गोरी चमड़ी के अश्केनाज़ी यहूदियों का नस्लवादी (racist) ठिकाना है।

यहूदी होना इज़राईल में बराबरी की गारंटी नहीं है। जो यहूदियत यूरोप की गलियों से आई, चमड़ी से गोरी, भाषा में हिब्रू से ज़्यादा यिडिश बोलती है—वही यहां की सत्ता की अस्ली पहचान है। बाक़ियों को, जो अरब देशों, अफ़्रीक़ा या एशिया से आए, मीज़राही यहूदी, इथोपियाई यहूदी, भारतीय यहूदी और यमनी यहूदी, ये 'यहूदी' होते हुए भी दोयम दर्जे के नागरिक हैं।

1948 में इज़राईल की स्थापना के बाद लाखों मीज़राही यहूदी भी अरब देशों से इज़राईल में आ बसे। लेकिन वहां उन्हें बराबरी नहीं मिली। 1948–60 के दशक में मीज़राही यहूदियों को ख़राब हालत वाले कैंपों में रखा गया जिन्हें "Ma'abarot" कहा जाता था।

कई रिपोर्ट्स के मुताबिक़ मीज़राही यहूदियों को स्कूलों में कमज़ोर माना जाता था। Israeli Council for Higher Education की 2017 के एक सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक़, 70% सीनियर एकेडमिक पोस्ट्स अश्केनाज़ी यहूदियों के पास थीं, जबकि मीज़राही केवल 19% तक सीमित थे। मीज़राही बोलियों, कपड़ों और संगीत को "गंवार" और "असभ्य" समझा जाता है।

TV, थियेटर और न्यूज़ मीडिया में केवल अश्केनाज़ी संस्कृति को ही "सच्ची यहूदी पहचान" की तरह दिखाया जाता है।

1971 में मीज़राही युवाओं ने "ब्लैक पैंथर्स ऑफ़ इज़राईल" नाम से आंदोलन शुरू किया था। उनका नारा था: "हम भूखे हैं, हम बेघर हैं और हम भेदभाव के शिकार हैं।" इन्होंने यह मुद्दा उठाया कि यहूदियों के नाम पर बना देश ख़ुद यहूदियों में भेदभाव कर रहा है।

इथोपियाई यहूदियों (जिन्हें Beta Israel कहा जाता है) की त्वचा का रंग काला है — और यहीं से भेदभाव की शुरुआत होती है। उन्हें अक्सर "कमतर", "अनपढ़" और "गंवार" समझा जाता है। ज़्यादातर इथोपियाई परिवारों को इज़राईल में दूर-दराज़, ग़रीबी से घिरे इलाक़ों में शिफ्ट किया गया, जहां न तो ढंग की स्कूलिंग थी, न जॉब के मौक़े। 1990 के दशक में एक बड़ा विवाद हुआ, जब ये पता चला कि इथोपियाई महिलाओं को बिना उनकी जानकारी के गर्भनिरोधक दवाइयां दी जा रही थीं। 1996 में एक अख़बार ने ख़ुलासा किया कि इथोपियाई यहूदियों द्वारा किए गए रक्तदान में उनके द्वारा दान किया गया ख़ून गुपचुप तरीक़े से फेंक दिया जाता था। इज़राईल में भारत और यमन से आए यहूदियों को भी लंबे समय तक सांस्कृतिक और सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ा। यमनी यहूदियों को शुरुआती सालों में Ma'abarot ट्रांजिट कैंपों में रखा गया, उनकी पारंपरिक यहूदी पहचान (जैसे टोपी, दाढ़ी, बोलियों) को "पिछड़ा" समझा गया और बच्चों को अलग स्कूलों में डालकर 'यूरोपीय यहूदी' जैसा बनाने की कोशिश की गई। 1950 के दशक में यमनी यहूदियों के बच्चों के "ग़ायब" होने की घटनाएं भी सामने आईं, आरोप है कि बच्चों को ज़बरदस्ती गोद दे दिया गया।

भारतीय यहूदी, जिनमें बग़दादी, बेनई इज़राईल और कोचीन समुदाय शामिल हैं, उनको भी अक्सर "कम यहूदी" माना गया। उन्हें सामाजिक तौर पर सीमित मौक़ों, सीमित प्रतिनिधित्व और उपेक्षित धार्मिक स्थानों में रखा गया। हालांकि भारतीय यहूदी आमतौर पर हिंसक विरोध नहीं करते, लेकिन उनकी चुप्पी के पीछे एक लंबा इतिहास है — जहां रंग, बोली और परंपरा के नाम पर उन्हें धीरे-धीरे हाशिए पर धकेला गया।

इस तरह मध्य पूर्व के चेहरे पर इज़राईल के नाम से एक बदनुमा दाग़ है ये ज़ियोनिस्ट रेसिस्ट स्टेट। ये क़तई तौर पर भारत-पाक की तरह एक देश के विभाजन का मामला नहीं है। पश्चिमी साम्राज्यवादी वर्चस्ववाद का पूरब के कलेजे पर एक ख़ंजर है इज़राईल। इसके नापाक ख़ूनी फ़सादी इरादों के समर्थन में खड़ा होना मानवता के विरुद्ध अक्षम्य अपराध है। ■■

कान्ति के वे सब्सक्राइबर

जिन्होंने अभी तक अपनी ख़रीदारी की रक़म जमा नहीं की है,

बराय मेहरबानी

इस QR Code

के ज़रिये जल्द अदायगी करें।

Name: KANTI

Pay Directly to: kanti8920589292@indianbk

नोट :

अदायगी के बाद

स्क्रीनशॉट

इस नम्बर पर

(9818799223)

ज़रूर भेजें।

“सत्य एक, संकेत अनेक”

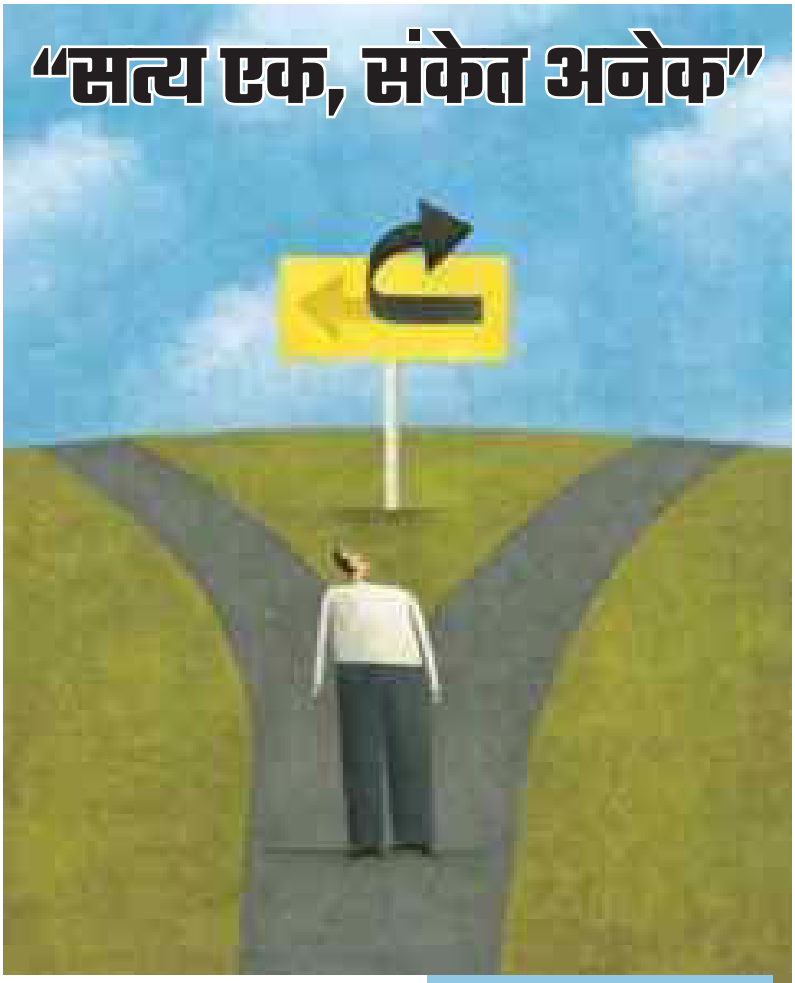

चिंतन



रिज़वान अहमद

“सभी धर्म अच्छे हैं”, “सभी एक ही ईश्वर की ओर ले जाते हैं”, “रास्ते भले अलग हों, मंज़िल एक है” — ऐसे वाक्य आजकल आम सुनाई देते हैं। यह एक प्रकार की धार्मिक सहिष्णुता को दर्शाता है, जो आधुनिक बहुलतावादी समाज की एक गूढ़ विशेषता है। परंतु जैसे ही इस्लाम यह दावा करता है कि वह “सत्य धर्म” है, और अंतिम संदेश वही है जो अंतिम पैग़म्बर के माध्यम से उतारा गया, तब यह प्रश्न उठता है—क्या इस्लाम दूसरों के धर्मों को अस्वीकार करता है? क्या यह बहुलतावाद का विरोध करता है? और यदि सभी धर्म ‘सच्ची बातें’ सिखाते हैं, तो इस्लाम की विशिष्टता की ज़रूरत क्यों?

इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार, आदम से लेकर ईसा (ईश्वर की कृपा उन पर हो) तक, सब पैग़म्बर सत्यधर्म के प्रचारक थे। अतः इस्लाम यह दावा नहीं करता कि वह कोई नवीन धर्म है, बल्कि वह तो उसी एक सत्यधर्म की अंतिम कड़ी है।

धर्मों की बहुलता और इस्लाम का उत्तरदायित्व

इस्लाम यह मानता है कि इतिहास के हर युग में हर क़ौम और समाज में ईश्वर ने अपना संदेश भेजा है। क़ुरआन में कहा गया है–

“हर समुदाय के लिए हमने एक रसूल भेजा है...।” (सूरतुन्नहल, 16:36)

इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार, आदम से लेकर ईसा (ईश्वर की कृपा उन पर हो) तक, सब पैग़म्बर सत्य-धर्म के प्रचारक थे। अतः इस्लाम यह दावा नहीं करता कि वह कोई नवीन धर्म है, बल्कि वह तो उसी एक सत्य-धर्म की अंतिम कड़ी है। इस्लाम का अर्थ ही है—ईश्वर के सामने समर्पण। और जो भी अपने युग में ईश्वर के सच्चे संदेश का पालन करता रहा, वह “मुस्लिम” था—चाहे उसे यह नाम मिला या न मिला। इसलिए, इस्लाम में धर्मों की विविधता कोई विरोध नहीं, बल्कि निरंतरता है।

‘सत्य धर्म’ की परिभाषा : मात्र सैद्धांतिक सहिष्णुता नहीं

यहां हमें समझना होगा कि इस्लाम जब अपने को दीन-ए-हक़ (सत्य-धर्म) कहता है, तो इसका आशय यह नहीं कि अन्य सब झूठ हैं, बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि–

- यह धर्म अपनी मूल स्थिति में

शुद्ध है;

• इसका सन्देश अंतिम और सर्वसमावेशी है;

• यह शिर्क (ईश्वर के साथ किसी को साझी ठहराना) से सर्वथा मुक्त है;

• इसकी शिक्षाएं अनंतकाल के लिए सार्वभौमिक हैं।

यह 'सत्य' होने का दावा अहंकार या प्रभुत्व की भावना से नहीं, बल्कि ज़िम्मेदारी और प्रमाणिकता से जुड़ा है।

क़ुरआन कहता है–"यह (क़ुरआन) उस सत्य की पुष्टि करता है जो इसके पहले (उतारे गए धर्म-ग्रंथों) में था, और उसकी निगरानी करता है।"

(सूरतुल माइदा, 5:48)

यह निगरानी क्या है? यह वह तत्व है जो बाइबिल, वेद, ज़बूर आदि ग्रंथों में समय के साथ घुली मानवीय मिलावटों को छांटकर, सत्य का संरक्षण करता है।

विकृति एवं भटकाव

इस्लामी विचार यह नहीं कहता कि सारे रास्ते ठीक हैं, बल्कि वह यह कहता है कि "शुरुआत में सारे रास्ते ईश्वर की ओर जाते थे, परंतु समय और मानव हस्तक्षेप ने उन्हें विकृत कर दिया।" यह उस दर्पण की तरह है जो पहले साफ़ था, पर धूल और धुंध ने उसे धुंधला बना दिया।

इस्लाम उस दर्पण को फिर से साफ़ करता है, और अंतिम रूप में ईश्वर के निर्देश को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है। अतः इस्लाम का दावा यह है कि–

• सब धर्मों की मूल आत्मा एक है: तौहीद (एकेश्वरवाद)।

• पर समय ने उन्हें बिगाड़ दिया।

• इस बिगाड़ को सुधारने और अंतिम रूप देने के लिए मुहम्मद (सल्ल.) को भेजा गया।

क़ुरआन कहता है–"आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म पूर्ण कर दिया, और तुम पर अपनी कृपा पूरी कर दी, और तुम्हारे लिए इस्लाम को धर्म के रूप में पसंद किया।"

(सूरतुल माइदा, 5:3)

सहिष्णुता का इस्लामी स्वरूप : अन्य धर्मों का सम्मान

अब प्रश्न यह उठता है कि अगर इस्लाम अपने को सत्य कहता है, तो क्या वह अन्य धर्मों को नकारता है? उत्तर है—नहीं।

जैसे ही इस्लाम यह दावा करता है कि वह "सत्य धर्म" है, और अंतिम संदेश वही है जो अंतिम पैग़म्बर के माध्यम से उतारा गया, तब यह प्रश्न उठता है—क्या इस्लाम दूसरों के धर्मों को अस्वीकार करता है? क्या यह बहुलतावाद का विरोध करता है? और यदि सभी धर्म 'सच्ची बातें' सिखाते हैं, तो इस्लाम की विशिष्टता की ज़रूरत क्यों?

इस्लाम 'सत्य' और 'सम्मान' को अलग-अलग दायरे में देखता है। वह मानता है कि सत्य एक ही हो सकता है, पर सम्मान सबको मिलना चाहिए। यही कारण है कि क़ुरआन यह कहता है :

"तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म है, और मेरे लिए मेरा धर्म।"

(सूरतुल काफ़िरून, 109:6)

इस्लाम किसी को जबरन धर्म में लाने की अनुमति नहीं देता–

"धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नहीं है। सत्य भली प्रकार स्पष्ट हो चुका है असत्य से...।"

(सूरतुल बक़रा, 2:256)

इससे स्पष्ट होता है कि इस्लाम विचार की स्वतंत्रता का भी पक्षधर है, परन्तु सत्य के प्रति आत्मविश्वास और स्पष्टता भी रखता है।

आत्म-प्रशंसा नहीं, ईश्वरीय आदेश का पालन

जब कोई मुस्लिम कहता है कि, "इस्लाम ही सत्य धर्म है", तो वह अपने मन की बात नहीं कह रहा, बल्कि वह क़ुरआन की उस घोषणा को दोहरा रहा है, जो कहता है–"निःसंदेह, धर्म (जो ईश्वर के यहां स्वीकार्य है), वह इस्लाम है।"

(आले इमरान, 3:19)

यह आत्म-प्रशंसा नहीं, एक गंभीर उत्तरदायित्व है। यह कथन किसी घृणा का नहीं, बल्कि ईश्वर की उस योजना का वर्णन है, जिसमें अब अंतिम सन्देश को मान लेना मनुष्य की ज़िम्मेदारी है।

इस्लामी एकेश्वरवाद की विशिष्टता

अब यह समझना आवश्यक है कि इस्लाम का तौहीद (एकेश्वरवाद) केवल दार्शनिक कल्पना नहीं, बल्कि जीवन पद्धति का मूल है। इस्लामी तौहीद–

• ईश्वर को अद्वितीय और निर्मूल्य मानता है,

• ईश्वर के साथ किसी साझेदार, मूर्त, देवता, अवतार आदि की कल्पना को अस्वीकार करता है,

• समस्त मानव समाज को एक ईश्वर की प्रजा और एक आदमी की संतति घोषित करता है।

यह विशुद्धता ही इस्लाम की सत्यता का आधार है। जब अन्य धर्मों

में मूर्ति पूजा, ईश्वर के पुत्र, त्रिमूर्ति आदि विचार जुड़ गए, तो इस्लाम ने इन विचलनों से अलग होकर मूल सत्य को फिर से केंद्र में रखा।

सत्य और सार्वभौमिकता : एक आधुनिक उत्तर

आज का मनुष्य तर्क चाहता है, प्रमाण चाहता है। इस्लाम केवल आस्था का नहीं, बुद्धि का भी धर्म है। क़ुरआन अनेक स्थलों पर सोचने, ग़ौर करने और प्रश्न पूछने को प्रेरित करता है। यही कारण है कि इस्लाम–

• इतिहास में कभी झूठा सिद्ध नहीं हुआ,

• विज्ञान, तर्क और दर्शन के मूल प्रश्नों को संतोषजनक उत्तर देता है,

• समाज और व्यक्ति के बीच संतुलन बनाता है,

• सत्य को अलंकृत नहीं, यथावत प्रस्तुत करता है।

सत्य का दावा, सबके लिए अवसर

इस्लाम का यह दावा कि वह "सत्य-धर्म" है, कोई बंद दरवाज़ा नहीं, बल्कि एक खुला आमंत्रण है। वह यह नहीं कहता कि बाक़ी सब झूठ हैं, वह कहता है कि सच्चाई की ओर लौट आओ, मूल स्रोत को पहचानो।

सभी धर्मों में जो भी अच्छाइयां हैं—नैतिकता, करुणा, आत्मा की शुद्धता, परोपकार—वे सब इस्लाम में न केवल हैं, बल्कि सुव्यवस्थित और शुद्ध रूप में विद्यमान हैं।

इस्लाम कहता है–"हमने तुम्हें एक मध्यम (उचित) समुदाय बनाया है, ताकि तुम मानवता पर साक्षी बनो...।"

(सूरतुल बक़रा, 2:143)

यह साक्षी बनने की ज़िम्मेदारी वही उठा सकता है जो सत्य पर हो, और जो सत्य की गवाही केवल शब्दों में नहीं, अपने आचरण, समाज और न्याय-व्यवस्था से दे सके।

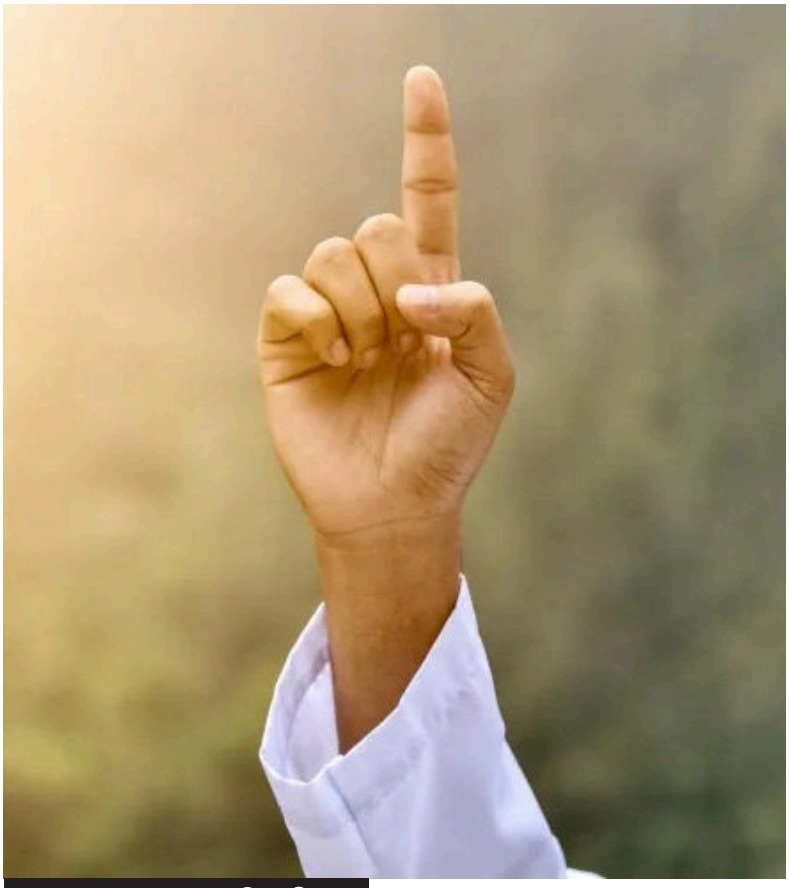

इस्लाम जब अपने को सत्य कहता है, तो वह दूसरों का अपमान नहीं करता, बल्कि यह दावे के साथ उन्हें सोचने का निमंत्रण देता है। यह दंभ नहीं, दावत है — सत्य की ओर, उस एक ईश्वर की ओर जिसने सबको पैदा किया, और सबको पुकारा— इस्लाम किसी संकीर्ण साम्प्रदायिक आग्रह का नहीं, बल्कि शाश्वत सत्य का सार्वभौमिक संदेश है।

इस्लाम जब अपने को सत्य कहता है, तो वह दूसरों का अपमान नहीं करता, बल्कि यह दावे के साथ उन्हें सोचने का निमंत्रण देता है। यह दंभ नहीं, दावत है—सत्य की ओर, उस एक ईश्वर की ओर जिसने सबको पैदा किया, और सबको पुकारा–"तो अपने रुख़ को उसी धर्म की ओर रखो जो एकाग्र है, वही ईश्वर की प्राकृतिक रचना है, जिस पर उसने मनुष्यों को उत्पन्न किया...।"

(सूरतुल-रूम, 30:30)

इस्लाम उसी मूल फ़ितरत की पुकार है—जिसे हमने खो दिया और जो केवल उसी में पूर्णता से संरक्षित है। यही उसका 'सत्य' होना है और यही उसका उत्तर भी। इस्लाम किसी संकीर्ण साम्प्रदायिक आग्रह का नहीं, बल्कि शाश्वत सत्य का सार्वभौमिक संदेश है। ■■

एक अपील , एक ऐलान और तआरुफ़

आपकी ख़ुसूसी तवज्जह का सबसे ज़्यादा मुस्तहिक़

38 साल की ख़िदमात

मुस्लिम लड़कियों का यतीमख़ाना, गया



कैफ़ीयते-क़ियाम : इदारा का तीन यतीम लड़कियों से 21 दिसम्बर 1986 को एक किराया के खपरैल मकान में क़ियाम अमल में आया था।

हिन्दुस्तान की रियासत बिहार, झारखंड, बंगाल, उड़ीसा में अपने तर्ज़ की पहली और वाहिद इक़ामती (Residential) तालीमगाह जो इस्लामी और असरी उलूम का संगम होने की वजह से मशहूर है। • इदारा बुनियाद के दिन से ही सही इस्लामी ख़ुतूत पर यतीम के साथ-साथ ग़रीब और ग़ैर-यतीम तालिबात की तालीमी व तर्बीयती ख़िदमात अंजाम दे रहा है। • यहां की तालिबात को मैट्रिक (Matric) पास करने के बाद कॉलेज के अलावा अरबी यूनिवर्सिटी में पहले और दूसरे साल में बाआसानी दाख़िला मिल जाता है। • शोबा-ए-हिफ़्ज़ की तालिबा को भी हिफ़्ज़ के साथ-साथ मैट्रिक तक पढ़ाया जाता है। • पांच ज़ुबानों में क़ुरआन और इस्लामियात और बिहार बोर्ड के निसाबे-तालीम के साथ मेयारी तालीम का नज़्म है। • **तालीमी साल** अप्रैल ता मार्च, • इदारा के अहाता (Campus) में ही पर्दे में रहकर नर्सरी से मैट्रिक तक की तालीम, होम साइंस, सिलाई-कटाई, मेहंदी व पेंटिंग और कम्प्यूटर की तालीम वग़ैरा दी जाती है। इसके लिए बच्चियों को कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। **तालीमी मराहिल** • इब्तिदाई •सानवी • आला • फ़ासलाती तालीम • शोबा हिफ़्ज़ **यतीम तालिबात की तादाद** 75 **नोट** यतीम तालिबात का सारा ख़र्च, तआम व क़ियाम वग़ैरा बिल्कुल मुफ़्त है। **बैरूनी तालिबात की तादाद** अपने ख़र्च पर दारुल अक़ामा (Boarding) में रहकर तालीम हासिल करने वाली और दूसरे गांव से पढ़कर जाने वाली लगभग 100 हैं । **किफ़ाला स्कीम (Sponsorship)** के तहत एक यतीम बच्ची का सालाना ख़र्च पच्चीस हज़ार रुपये (Rs. 25,000) है। आप भी एक यतीम बच्ची की किफ़ालत की ज़िम्मेदारी लेकर सवाब में शरीक हों । **असातिज़ा, मुअल्लिमात और दीगर मुलाज़िमीन की तादाद** 33 तदरीसी और ग़ैर-तदरीसी स्टाफ़ की एक माह की तनख़्वाह एक लाख पच्चास हज़ार रुपये (Rs.1,50,000) से ज़्यादा है। **सालाना ख़र्च** तक़रीबन चालीस लाख रुपये (Rs. 40,00,000) । **ज़रिया आमदनी** मुस्लिम अवाम के चंदे **अपील** आज के माद्दापरस्ताना और जदीद दौर में लड़कियों के लिए जदीद और मुकम्मल इस्लामी तर्ज़े-तालीम के साथ रिहाइशी (Residential) इदारों की पहले से कहीं ज़्यादा बढ़कर ज़रूरत है। • आप इस महंगाई को देखते हुए और रमज़ान के मुबारक मौक़ा पर इदारे की नन्ही-मुन्नी मासूम यतीम बच्चियों को ऊंचा उठाने के लिए अपने • ज़कात • अतियात • सदक़ात से भरपूर माली मदद करें ताकि वे तालीम और हुनर के मैदान में आगे बढ़ सकें और किसी से पीछे न रहें। • बाक़ी तामीरी व तालीमी मन्सूबों को पूरा करने के लिए रक़म की फ़ौरी ज़रूरत है। • इदारा आपके फ़राख़दिलाना और मुख़लिसाना भरपूर माली तआवुन का मुंतज़िर है। **याद रखें** यह लड़कियों का इदारा है। यहां चंदा वसूल करने वालों की बहुत कमी है। यहां का कोई भी मुहस्सिल कमीशन पर चंदा वसूल नहीं किया करता है।

नोट : इदारा की मुख़्तसर तारीख़ दस्तावेज़ी फ़िल्म (Documentary Film) नज़रे-इनायत You Tube (Nazr-e-Enayeth) पर देखें।

चैक व ड्राफ़्ट और कोर बैंकिंग स्लिप पर सिर्फ यह लिखें : THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGAE

बराए राबिता : चैक व ड्राफ़्ट और मनीआर्डर भेजने का पता

Founder & Hon. G. Secretary, THE GAYA MUSLIM GIRLS ORPHANAGE, At • : Kolowna, P.o : Cherki-824237, Distt : Gaya (Bihar) India

Email : thegayamuslimgirlsorphanage@gmail.Com, Mobile : 8969435151, Website : www.gmgo.in

: Beneficiary Name
THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGE
(Bank A/C No. : 300402010007752 (ज़कात
(Bank A/C No. : 300402010009846 (डोनेशन
Bank IFSC Code No : UBIN0530042
Bank : UNION BANK OF INDIA
(MAIN BRANCH GAYA)

Scan & Pay

याद रखें : बैंक में रक़म ट्रांसफ़र की तफ़्सील बराए मेहरबानी स्कैन एंड पै (Scan & Pay) या किसी ज़रिये से रक़म ट्रांसफ़र के बाद स्क्रीन शॉट (Screen Shot) नाम व पता सहित व्हाट्स एप कर दें ताकि रसीद भेजी जा सके।

व्हाट्स एप नम्बर 7367909126 बानी व इज़ाज़ी जनरल सेक्रेट्री इक़बाल अहमद ख़ां 9934480190

पटना ब्रांच ऑफ़िस : पटना शहर के हमदर्द अपना चैक व ड्राफ़्ट और रक़म देने के लिए इनसे राबिता करें।

जनाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ां (सद्र) समनपूरा, पटना, **मोबाइल : 9934943229**

जनाब इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ां, समनपूरा, पटना, **मोबाइल : 9631867066**

नैतिकता की मूल आत्मा



सौंदर्य बोध

तबाना नूरी

"हर काम इबादत है, अगर इरादा नेक हो। अर्थात् कर्मों का मोल नीयत से है।'' यह एक ऐसा विचार है जो केवल धार्मिक अनुशासन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि समूची मानव सभ्यता की नैतिक नींव बनाता है। जब किसी कर्म के मूल्यांकन की बात आती है, तो यह विचार सिर्फ़ परिणाम या बाह्य क्रिया को नहीं, बल्कि उस क्रिया के पीछे की भावना, प्रेरणा और नीयत को केंद्र में रखता है। 'नीयत आधारित कर्म' ही मानवता की सबसे स्थायी नैतिक संरचना है। यह विचार इतना सार्वभौमिक है कि इसे किसी भी नैतिक दर्शन में जोड़ा जा सकता है—हिंदू धर्म में गीता की 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' से लेकर बौद्ध परंपरा की 'चित्त की शुद्धि' तक। इस्लाम में कहा गया है कि 'इन्नमाल-आ'मालु बिन्नियात' अर्थात् अमल का मोल नीयत से है, नीयत की शक्ति का यह सर्वोत्तम उदाहरण है।

फल की नहीं, भावना की चिंता

भारतीय दर्शन में भी यही विचार गीता के माध्यम से प्रकट होता है–"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"। यह श्लोक केवल फलत्याग की बात नहीं करता, बल्कि यह व्यक्ति को इस बोध तक ले जाता है कि कर्म करते समय नीयत और मन की अवस्था ही निर्णायक है।

'नीयत आधारित कर्म' ही मानवता की सबसे स्थायी नैतिक संरचना है। यह विचार इतना सार्वभौमिक है कि इसे किसी भी नैतिक दर्शन में जोड़ा जा सकता है–हिंदू धर्म में गीता की 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' से लेकर बौद्ध परंपरा की 'चित्त की शुद्धि' तक। इस्लाम में कहा गया है कि 'इन्नमाल-आ'मालु बिन्नियात' अर्थात अमल का मोल नीयत से है, नीयत की शक्ति का यह सर्वोत्तम उदाहरण है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से यह नहीं कहते कि युद्ध करो क्योंकि तुम विजयी होओगे, बल्कि वह कहते हैं–युद्ध धर्म के लिए है, अन्याय के विरुद्ध है, इसलिए यह इबादत है।

यहां भी कर्म का शुद्धता से किया जाना ही प्रधान है। यदि कोई शिक्षक केवल तनख़्वाह के लिए पढ़ा रहा है, और दूसरा शिक्षक कम संसाधनों में भी छात्र की उन्नति के लिए प्रयत्नशील है, तो शिक्षण क्रिया दोनों के लिए समान नहीं है–एक 'रोज़गार' है, दूसरा 'सेवा'।

बौद्ध दर्शन में चित्त की शुद्धि

बुद्ध ने कर्म की व्याख्या 'चित्त' (मनोवृत्ति) के संदर्भ में की। "चित्तं भगवतो मूलं", अर्थात् चित्त ही सबका मूल है। बौद्ध धर्म में 'सही दृष्टि', 'सही

संकल्प' जैसे अष्टांगिक मार्ग के पहले दो अंग नीयत की शुद्धता को ही दर्शाते हैं। 'सही संकल्प' अर्थात् अहिंसा, करुणा और त्याग की भावना से किया गया कर्म। इसका अर्थ है कि अगर कोई दवा देता है, लेकिन हत्या की नीयत से देता है, तो वह चिकित्सक नहीं, हत्यारा है। वहीं यदि कोई जीवन बचाने की नीयत से कार्य करता है—even at great cost—वह बोधिसत्व मार्ग पर है।

बौद्ध चिंतन की यह विशेषता है कि वह केवल बाह्य क्रियाओं को नहीं, आंतरिक मानसिकता और दृष्टिकोण को भी कर्म में शामिल करता है।

पश्चिमी नैतिकता में नीयत की भूमिका

यह विचार केवल पूरब की विरासत नहीं है। इमैनुअल कांट जैसे पश्चिमी दार्शनिक ने भी 'ड्यूटी फॉर ड्यूटी'ज़ सेके' (कर्तव्य के लिए कर्तव्य) के सिद्धांत के अंतर्गत यही बात कही कि नीयत ही नैतिकता का मूल है। यदि कोई कार्य केवल किसी निजी लाभ के लिए किया गया है, तो वह नैतिक नहीं है। चाहे वह कितना ही भला क्यों न दिखे। कांट का 'कैटेगॉरिकल इम्पेरेटिव' इसी बात को रेखांकित करता है कि जो नियम तुम अपने लिए बनाओ, वह सार्वभौमिक होना चाहिए—यानी उसमें नीयत और समानता का समावेश होना चाहिए।

आधुनिक समाज और नीयत की जटिलताएं

आज का युग 'परिणाम' और 'प्रदर्शन' का युग है। यहां सफलता को आंकने की मशीनें हैं—डिग्रियां, पैकेज, फॉलोअर्स, रैंकिंग। लेकिन इन सबमें नीयत का कोई पैमाना नहीं है। कोई पत्रकार सच लिखता है, लेकिन वह सत्ता के विरुद्ध होता है, इसलिए उसे देशद्रोही कह दिया जाता है। कोई डॉक्टर जानता है कि यह ऑपरेशन अनावश्यक है, फिर भी वह पैसे के लिए करता है। तो सवाल उठता है—क्या कर्म का मूल्य इसके परिणाम से है या उसकी नीयत से?

यहीं पर नीयत की अवधारणा हमें नैतिक संतुलन देती है। समाज में जब हम यह पूछते हैं कि 'यह किस लिए किया गया?' तब हम कर्म के पीछे के नैतिक ढांचे की पड़ताल कर रहे होते हैं।

> **यह विचार केवल पूरब की विरासत नहीं है। इमैनुअल कांट जैसे पश्चिमी दार्शनिक ने भी 'ड्यूटी फॉर ड्यूटी'ज़ सेके' (कर्तव्य के लिए कर्तव्य) के सिद्धांत के अंतर्गत यही बात कही कि नीयत ही नैतिकता का मूल है। यदि कोई कार्य केवल किसी निजी लाभ के लिए किया गया है, तो वह नैतिक नहीं है। चाहे वह कितना ही भला क्यों न दिखे।**

न्यायशास्त्र में भी नीयत का स्थान

क़ानून की दुनिया में भी 'नीयत' का विशेष महत्व है। हत्या और ग़लती से हुई मृत्यु (manslaughter) में अंतर इसी नीयत से तय होता है। 'मेन्स रिया' (mens rea)—अर्थात् दोषपूर्ण मानसिक अवस्था—किसी अपराध की प्रकृति को तय करती है। अगर कोई ग़लती से किसी को मार दे, तो वह हत्या नहीं कहलाती। वहीं जान-बूझकर किया गया आघात हत्या बनता है। यह अंतर केवल क्रिया में नहीं, मानसिकता में है—नीयत में है।

कर्म को इबादत बनाने की शर्त : नीयत की पवित्रता

यह बात कहनी आसान है कि हर कर्म इबादत हो सकता है, लेकिन वास्तव में यह तभी संभव है जब उसमें तीन तत्व हों–

1. सच्ची नीयत : बिना छल, लोभ, अहंकार के कार्य किया जाए।

2. समर्पण : कर्म को सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक ज़िम्मेदारी समझकर किया जाए।

3. निरहंकारिता : फल की प्राप्ति से पहले स्वयं को त्याग दिया जाए।

अगर एक मज़दूर दिनभर ईमानदारी से काम करता है और शाम को अपने बच्चों के लिए दूध लाता है, तो वह पूरी दिनचर्या एक इबादत बन जाती है। वहीं अगर कोई बड़ा व्यापारी धोखाधड़ी से अरबों कमाता है, और फिर दान कर देता है, तो वह कर्म पूजा नहीं, पाखंड है।

सामूहिक जीवन में नीयत का प्रभाव

नीयत केवल व्यक्तिगत नहीं होती, उसका सामाजिक प्रभाव भी होता है। जब राजनेता नीति बनाते हैं, अगर उनकी नीयत जनकल्याण की होती है, तो नीतियां न्यायपूर्ण होती हैं। जब शिक्षक सच्ची नीयत से पढ़ाते हैं, तो समाज का चरित्र बनता है। जब पत्रकार नीयत से सच्चाई दिखाते हैं, तो लोकतंत्र जीवित रहता है। इसीलिए इबादत केवल मस्जिद या मंदिर तक सीमित नहीं, बल्कि न्यायालय, विद्यालय, समाचार कक्ष, खेत, फैक्ट्री—हर स्थान इबादतगाह बन सकता है, बशर्ते नीयत नेक हो।

कुरआन में बार-बार 'क़ल्ब' (हृदय) की शुद्धता पर बल दिया गया है। "अल्लाह तुम्हारे अमल नहीं, तुम्हारे दिलों को देखता है।" यह कथन बताता है कि कर्म और नीयत की यह गहराई केवल बाह्य क्रियाओं की दुनिया में नहीं, आत्मा के स्तर पर सक्रिय है। नीयत वह अदृश्य धागा है जो हर कर्म को नैतिकता से जोड़ता है।



नीयत की शक्ति : इस्लाम की रूह

इस्लामी विचार में नीयत (इरादा) को कर्म की आत्मा कहा गया है। हदीस-ए-नबवी में वर्णित यह कथन—'इन्नमाल-आ'मालु बिन्नियात'—किसी भी कर्म के मूल्यांकन के लिए एक निर्णायक कसौटी है। इसका अर्थ यह है कि परिणाम से पूर्व नीयत की शुद्धता आवश्यक है। यदि एक व्यक्ति दान देता है, लेकिन वह दिखावे, सत्ता या सम्मान के लिए देता है, तो वह दान नहीं, एक स्वार्थसिद्धि है। इसके उलट, यदि कोई कम संसाधनों में भी किसी की सहायता करने का सच्चा इरादा रखता है, तो वह प्रयास इबादत बन जाता है, भले ही वह दिखाई न दे। यह हदीस (Prophetic Saying) हज़रत उमर (रज़ि.) से वर्णित है और इसे इमाम बुख़ारी व मुस्लिम ने अपनी सहीह हदीस संग्रहों में पहले ही अध्याय में उल्लेख किया है। इस हदीस को इस्लामी नैतिकता की मूल आत्मा कहा जाता है।

क़ुरआन में बार-बार 'क़ल्ब' (हृदय) की शुद्धता पर बल दिया गया है। "अल्लाह तुम्हारे अमल नहीं, तुम्हारे दिलों को देखता है।" यह कथन बताता है कि कर्म और नीयत की यह गहराई केवल बाह्य क्रियाओं की दुनिया में नहीं, आत्मा के स्तर पर सक्रिय है।

नीयत वह अदृश्य धागा है जो हर कर्म को नैतिकता से जोड़ता है। यह वह बुनियादी सिद्धांत है जो मनुष्यता की साझा चेतना को रेखांकित करता है। क़ुरआन की 'नीयत आधारित कर्म' की शिक्षा, गीता का निष्काम कर्मयोग, बौद्ध धर्म का 'चित्त शुद्धि मार्ग' और कांट की नैतिकता, सब मिलकर एक बात कहते हैं— हर कर्म इबादत है, अगर इरादा नेक हो।

आज जब हम बाहरी सफलता, लोकप्रियता और प्रदर्शन के दौर में जी रहे हैं, तब यह विचार हमें याद दिलाता है कि सच्ची सफलता बाहर नहीं, भीतर से आती है। और वह भीतर की शुद्धता 'नीयत' से ही जन्म लेती है। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि समाज नैतिक हो, जीवन आध्यात्मिक हो और कर्म इबादत बने—तो हमें अपनी नीयत को सबसे पहले शुद्ध करना होगा। ■■

क़ौम के अहल सर्वत और अह्ले-ख़ैर हज़रात से ख़ुसूसी अपील

यतीमख़ाना इस्लामिया, गया

107 साल की ख़िदमात

आपके माली तआवुन का मुंतज़िर है



तआरुफ़ : इदारा की बुनियाद अक्तूबर 1917 में एक उस्ताद और दो यतीम बच्चों से आठ आने (50 पैसे) माहवार किराया की कोठरी में Rs. 30 रुपये की छोटी-सी रक़म से पड़ी थी। **तालीमी साल :** अप्रैल ता मार्च **तालीमी मराहिल :** इब्तिदाई, • सानवी, • आला, • शोबा-ए-हिफ़्ज़, • इनायत (I.T.I) • फ़ासलाती तालीम : I.A., B.A, M.A और लाइब्रेरी साइंस (BLIS) • तादाद ज़ेरे-तालीम तलबा व तालिबात : तक़रीबन 450 • **तादाद कुल यतीम तलबा** 60 • बैरूनी तलबा, जो अपना ख़र्च देकर हॉस्टल में रहते हैं, उसके अलावा हैं। • तादाद तदरीसी व ग़ैर-तदरीसी स्टाफ़ : 20 **सालाना ख़र्च :** पैंतीस लाख (RS. 35,00,000) रुपये से ज़्यादा। **ज़रिया आमदनी :** मुस्लिम अवाम के चंदे। **ख़र्चे :** यतीम तलबा का सारा ख़र्च (तआम, क़ियाम, रिहाइश वग़ैरा बिल्कुल मुफ़्त) ये सारा ख़र्चे इदारा पूरा करता है। किसी तरह का कोई ख़र्च नहीं लिया जाता है। **याद रखें :** (1) यहां का कोई भी मुहस्सिल कमीशन पर चंदा वसूल नहीं किया करता है। (2) पांच ज़बानों में क़ुरआन व इस्लामियात के साथ क्लास 1 से मैट्रिक तक जो बिहार बोर्ड से मंज़ूरशुदा है मेयारी तालीम है। • हिफ़्ज़ के साथ-साथ मैट्रिक का नज़्म (3) 107 साल से यतीम और ग़ैर-यतीम तलबा की इस्लामी माहौल में दीनी व असरी तालीम के साथ तालीमी व तरबियती ख़िदमात अंजाम दे रहा है। (4) इदारा ही के Campus में दो हरे-भरे पार्क के साथ शानदार मस्जिद, तालीमगाह, इक़ामतगाह, मतबख़ और दूसरे शोबे वग़ैरा हैं • इसलिए तलबा को कहीं आना-जाना नहीं पड़ता है। **कफ़ाला स्कीम (Sponsorship)** के तहत एक यतीम तालिब-इल्म का सालाना ख़र्च RS. 25,000 है। आप भी इस कारे-सवाब में शरीक हों। • यहां के तलबा को मैट्रिक (Matric) पास करने के बाद कॉलेज के अलावा अरबी यूनिवर्सिटी में आलिमियत के पहले व दूसरे साल में आसानी से दाख़िला मिल जाता है। (5) यतीमख़ाना से मैट्रिक पास करने वाले यतीम तलबा का दाख़िला यतीमख़ाना के इनायत (I.T.I.) में बिल्कुल मुफ़्त है। उनसे किसी तरह का कोई ख़र्च नहीं लिया जाता है। पहले की तरह रहने-सहने और खाने-पीने की सारी सहूलियात दी जाती है। **अपील :** इस माद्दा परस्ताना और जदीद दौर में दीनी व असरी उलूम के रिहायशी (Residential) इदारों की पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरत है। • आसमान छूती महंगाई में इदारा की भरपूर माली मदद करें। तआवुन की मुख़्तलिफ़ शक्लें हैं जैसे • ज़कात, • अतियात, • सदक़ात, वग़ैरा और इदारा के बाक़ी तालीमी व तामीरी मन्सूबों के लिए भी रुपये की बहुत ज़रूरत है। इदारा आपसे नन्हे-मुन्ने मासूम यतीम बच्चों को तालीम के साथ-साथ बाहुनर बनाने के लिए और उन्हें ऊंचा उठाने के लिए फ़राख़दिलाना माली तआवुन की अपील करता है।

नोट : इदारा की मुख़्तसर तारीख़ दस्तावेज़ी (Documentary Film) फ़िल्म नज़रे-इनायत You Tube (Nazr-e-Enayeth) पर देखें।

चैक व ड्राफ़्ट और कोर बैंकिंग स्लिप पर सिर्फ यह लिखें : THE GAYA MUSLIM ORPHANAGAE

बराए राबिता : चैक व ड्राफ़्ट और मनीआर्डर भेजने का पता

Hon. Secretary, THE GAYA MUSLIM ORPHANAGE •
Cherki-824237, Distt : Gaya (Bihar) India

Mobile : 9801213022, Whatsapp No. 7258063440

: Beneficiary Name
THE GAYA MUSLIM ORPHANAGE
(Bank A/C No.: 300402010010581 (ZAKATH
(Bank A/C No.: 300402010002982 (DONATIONS
Bank IFSC Code No: UBIN0530042
Bank: UNION BANK OF INDIA
(MAIN BRANCH GAYA)

Scan & Pay

याद रखें : बैंक में रक़म ट्रांसफ़र की तफ़्सील बराए मेहरबानी स्कैन ऐंड पे पर (Scan to Pay) या किसी ज़रिये से रक़म ट्रांसफ़र के बाद स्क्रीन शॉट (Screen Shot) और नाम व पता ऊपर के व्हाट्सऐप नंबर पर भेज दें ताकि रसीद भेजी जा सके।

इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ान
कारगुज़ार सदर : 9631867066

डॉक्टर जेड.ऐच. ख़ान
एजाज़ी सेक्रेट्री

E-mail : gmocde@yahoo.com.in
Website: www.gmogaya.in

पटना ब्रांच ऑफ़िस : पटना शहर के हमदर्द अपना चेक व ड्राफ़्ट और रक़म देने के लिए इनसे राबिता क़ायम करें। जनाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ां समनपुरा, पटना। 9934943229, जनाब इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ां समनपुरा, पटना। 9631867066

शाकाहार की सियासत और मांसाहार की सार्थकता



मुख्य स्तम्भ



सुफ़ियान अहमद

भारत में, जहां खान-पान की विविधता विश्व की सबसे अनोखी परंपराओं में से एक है, वहीं यह विडंबना भी है कि इसी भोजन को लेकर सांस्कृतिक वर्चस्व, हिंसा और राजनीति की एक गहरी खाई बन गई है। शाकाहारी वर्चस्व बनाम मांसाहार का मामला अब विचारधारा और सत्ता के समीकरणों से जुड़ चुका है।

भोजन केवल शारीरिक आवश्यकता नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक प्रतीक भी है। यह न केवल हमारे स्वाद, बल्कि हमारी भौगोलिक स्थिति, पहचान, परंपरा और सामाजिक संरचना से भी जुड़ा होता है। भारत में, जहां खान-पान की विविधता विश्व की सबसे अनोखी परंपराओं में से एक है, वहीं यह विडंबना भी है कि इसी भोजन को लेकर सांस्कृतिक वर्चस्व, हिंसा और राजनीति की एक गहरी खाई बन गई है। शाकाहारी वर्चस्व बनाम मांसाहार का मामला अब विचारधारा और सत्ता के समीकरणों से जुड़ चुका है।

मूल प्रश्न

जब किसी विशिष्ट वर्ग या समुदाय का खान-पान 'नैतिक', 'शुद्ध' या 'भारतीय' घोषित किया जाता है, और अन्य समुदायों को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से 'असभ्य', 'पशुवादी' या 'राष्ट्रविरोधी' ठहराया जाता है, तो यह केवल भोजन की बात नहीं रहती बल्कि यह एक सांस्कृतिक नियंत्रण और अस्मिता के दमन का औज़ार बन जाता है। इस विमर्श में भारत के अल्पसंख्यकों विशेष रूप से मुसलमानों की स्थिति संवेदनशील है, क्योंकि उनका खान-पान बहुसंख्यकवादियों के सीधे निशाने पर आता है।

घरों पर छापे, फ्रिज़ खोलकर जांच, सड़क पर गोमांस ले जाते लोगों को पीटना, बीफ़ की अफ़वाह फैलाकर हिंसा भड़काना, ये घटनाएं स्पष्ट करती हैं कि 'शाकाहारी वर्चस्व' केवल एक विचारधारा नहीं, बल्कि यह बहुसंख्यकवादी नियंत्रण की रणनीति बन चुकी है।

शाकाहारी वर्चस्व की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीन भारत की सामाजिक संरचना का मूल आधार वर्ण व्यवस्था रही है, जिसमें ब्राह्मणवाद ने शुद्धता और अपवित्रता के संहिताबद्ध मानक स्थापित किए। मांस को 'अशुद्ध' और शाकाहार को 'सात्त्विक' घोषित करके एक नैतिक श्रेष्ठता का ढांचा खड़ा किया गया। परिणामस्वरूप, दलित, आदिवासी और जनजातीय समूहों की मांसाहारी संस्कृति को 'निम्न' और 'पशु-सदृश' क़रार दिया गया। इस तरह, खान-पान के ज़रिये सत्ता की सांस्कृतिक नींव तैयार की गई।

शाकाहारी वर्चस्ववाद

हमारे देश में आज भी शाकाहारी वर्चस्ववाद अलग-अलग रूपों में झलकता है। स्कूलों में मिड-डे मील में अघोषित रूप से मांसाहार वर्जित रहता है। विश्वविद्यालयों के छात्रावासों में मांसाहारी छात्रों को 'अलग थाली' मिलती है। राजनीतिक दल शाकाहार को ''राष्ट्रभक्ति, सभ्यता और भारतीय संस्कृति'' के नाम पर आगे बढ़ाते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि भारत की एक बहुत बड़ी आबादी मांस को अपनी पोषण आवश्यकता और परंपरा दोनों के रूप में ग्रहण करती है।

मांसाहार की मौलिक सार्थकता

भारत की दो तिहाई से भी अधिक आबादी किसी न किसी रूप में मांस, मछली, अंडा या अन्य पशु उत्पादों का सेवन करती है। विशेषकर आदिवासी, दलित, उत्तर-पूर्वी, दक्षिण भारतीय और मुस्लिम समुदायों में मांस केवल स्वाद नहीं, बल्कि पोषण का भी सस्ता और सुलभ स्रोत है। अंडे, मछली और बीफ़ जैसे खाद्य पदार्थ, बहुत बड़ी आबादी की प्रोटीन की ज़रूरत को पूरा करते हैं, जबकि पौष्टिक शाकाहार उनके लिए अक्सर महंगा विकल्प होता है।

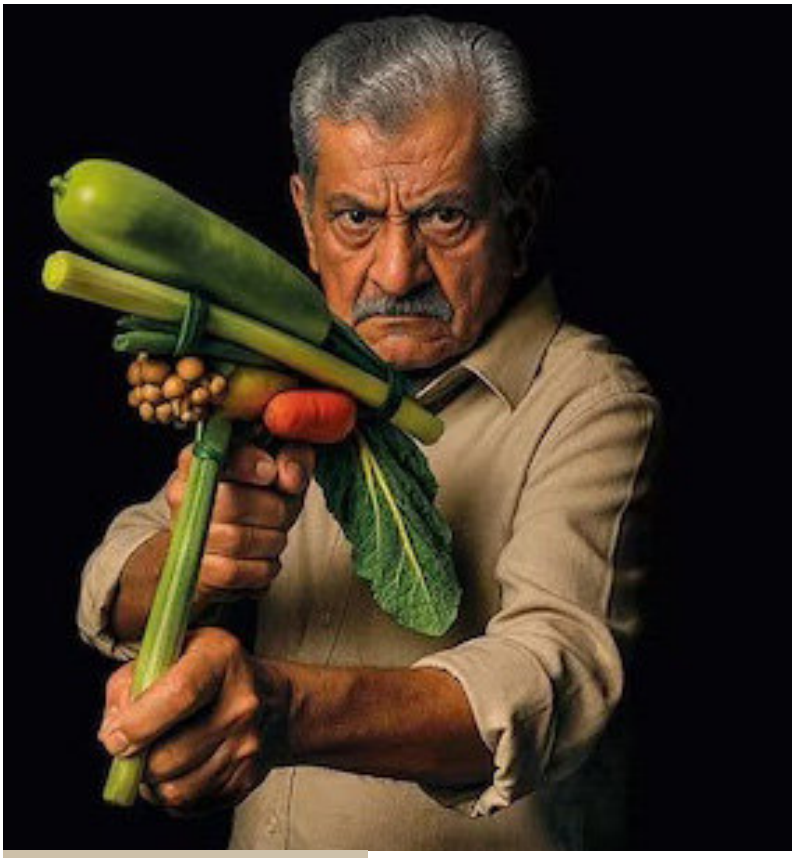

जब किसी विशिष्ट वर्ग या समुदाय का खान-पान 'नैतिक', 'शुद्ध' या 'भारतीय' घोषित किया जाता है, और अन्य समुदायों को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से 'असभ्य', 'पशुवादी' या 'राष्ट्रविरोधी' ठहराया जाता है, तो यह केवल भोजन की बात नहीं रहती बल्कि यह एक सांस्कृतिक नियंत्रण और अस्मिता के दमन का औज़ार बन जाता है।

यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि मांस उत्पादन और इससे जुड़ी अर्थव्यवस्था लाखों लोगों के रोज़गार का स्रोत है, चाहे वह पशुपालन हो, होटल उद्योग या निर्यात क्षेत्र। भारत बीफ़ के निर्यात में अग्रणी देश है, और इस उद्योग में हर समुदाय के लाखों लोग लगे हुए हैं। जब बीफ़ पर प्रतिबंध लगाए जाते हैं या गोमांस से जुड़े धंधों पर हमला होता है, तो यह सीधे-सीधे रोज़गार और जीविका के संकट में बदल जाता है। स्लॉटरहाउस बंद करना, मीट विक्रेताओं को लाइसेंस न देना, मीट बाज़ारों को जबरन बंद कराना, यह सब मांसाहार पर सांस्कृतिक प्रतिबंध के साथ-साथ आर्थिक प्रतिबंध भी है।

सह-अस्तित्व बनाम सांस्कृतिक वर्चस्ववाद

भारत में अनेक धर्मों और जातियों

का सह-अस्तित्व रहा है, जिनके खान-पान की परंपराएं भिन्न हैं। बौद्ध, जैन और कुछ हिंदू समुदाय जहां शाकाहार में विश्वास रखते हैं, वहीं मुसलमान, ईसाई, सिख और कई हिंदू उपसमुदाय मांसाहार अपनाते हैं, किंतु जब शाकाहार को ''राष्ट्रधर्म'' की तरह प्रस्तुत किया जाने लगे और मांसाहार को ''अभारतीय'' या ''असभ्य'' कहकर अपमानित किया जाए, तो यह बहुलतावाद की भावना का अपमान बन जाता है।

जैन, हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, आदिवासी, बौद्ध, सभी की खान-पान परंपराएं भिन्न हैं। आदिवासी समुदाय, पूर्वोत्तर भारत और दक्षिण भारत में भी बीफ़ और अन्य पशुओं का मांसाहार आम है, लेकिन जिस राष्ट्रवाद की रचना आज की जा रही है, उसमें केवल एकरूपता को ही 'भारतीय' माना जाता है। मांसाहार को 'विदेशी', 'आक्रांता' और 'राक्षसी प्रवृत्ति' क़रार दिया जाता है, जबकि शाकाहार को 'स्वदेशी' और 'धार्मिक पवित्रता' का पर्याय बना दिया गया है।

भारत में विशेष रूप से मुस्लिम समुदाय की थाली अब केवल सामाजिक रूप से ही नहीं, बल्कि प्रशासनिक और संस्थागत रूप से भी संदेह के घेरे में है। स्कूलों और कॉलेजों में मुस्लिम छात्रों को अक्सर 'शुद्ध थाली' की शर्तों का पालन करना पड़ता है। कुछ विश्वविद्यालयों में बीफ़ क्लब पर रोक लगाई गई। मेस में मांसाहार पर दबाव और रमज़ान में विशेष मांसाहारी भोजन की मांग को 'कट्टरपंथ' की तरह देखा जाना आम बात हो गई है।

यह विचारधारा न केवल मुस्लिमों को बल्कि अन्य मांसाहारियों को भी 'भिन्न' ठहराती है और उन्हें भारत की सांस्कृतिक कल्पना से बाहर धकेलती है। यह एक तरह का सांस्कृतिक निर्वासन है, जहां आप शारीरिक रूप से देश में हैं, लेकिन मानसिक और सांस्कृतिक रूप से 'बाहर' के माने जाते हैं।

मॉब लिंचिंग और खान-पान की निगरानी

वर्ष 2014 के बाद से खान-पान पर निगरानी, 'बीफ़' पर प्रतिबंध और उसके संदेह मात्र पर हत्या जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है। इन घटनाओं ने न केवल भारत की धर्मनिरपेक्ष छवि को धूमिल किया है, बल्कि भोजन की स्वतंत्रता पर भी गहरी चोट की है। 'गोरक्षा' के नाम पर की गई हिंसाएं बताती हैं कि यह अब केवल खान-पान का मुद्दा नहीं, बल्कि सांप्रदायिकता और घृणा का औज़ार भी बन चुका है।

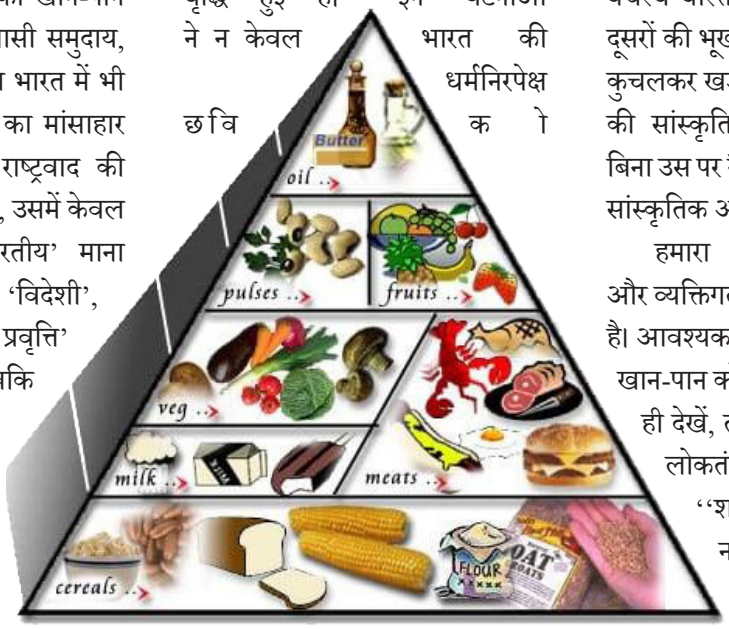

सह-अस्तित्व की संस्कृति बनाम वर्चस्ववाद की राजनीति

भारत का संविधान हर नागरिक को जीवन जीने और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार देता है, जिसमें उसकी खान-पान की स्वतंत्रता भी शामिल है। शाकाहारी या मांसाहारी होना, किसी की संस्कृति या श्रद्धा का विषय हो सकता है, किंतु वह दूसरे की थाली पर वर्चस्व का आधार नहीं बन सकता।

जो समाज सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर बना है, वह अगर भोजन की पसंद को लेकर ख़ेमों में बंटने लगे, तो यह केवल सांस्कृतिक विघटन नहीं बल्कि लोकतांत्रिक पतन का भी संकेत है।

आत्ममंथन की आवश्यकता

सवाल उठता है कि क्या शाकाहारी वर्चस्व वास्तव में नैतिक है, यदि वह दूसरों की भूख, परंपरा और पहचान को कुचलकर खड़ा होता है? क्या मांसाहार की सांस्कृतिक सार्थकता को समझे बिना उस पर नैतिक टिप्पणी करना स्वयं सांस्कृतिक अपवित्रता नहीं है?

हमारा संविधान धर्मनिरपेक्षता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात करता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम खान-पान को निजी अधिकार की तरह ही देखें, तभी भारत का सांस्कृतिक लोकतंत्र सशक्त बन पाएगा। ''शाकाहारी वर्चस्ववाद'' न केवल लोगों की थाली छीनेगा बल्कि उनकी गरिमा, सामाजिक प्रतिष्ठा और जीवन के सहजपन पर भी आघात करेगा। सह-अस्तित्व की संस्कृति तभी संभव है जब हर व्यक्ति की थाली को सहजता से देखा जाए न कि शंका से। इसका आशय है कि भोजन का चुनाव व्यक्ति की धार्मिक, भौगोलिक और सामाजिक स्थिति से जुड़ा है, उसे एक विचारधारा के ढांचे में क़ैद करना क़ानूनी और यथार्थवादी दृष्टिकोण के विरुद्ध है।

■■

शाकाहारी वर्चस्ववाद की राजनीति का प्रतिरोध

• सलमान अहमद

एक निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण समाज में हर किसी को अपना आहार चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, परन्तु शर्त यह है कि इससे स्वयं को या समाज को कोई क्षति न पहुंचे। यदि एक समूह की धारणा है कि विशेष खाद्य पदार्थों पर प्रतिबंध लगे, जबकि दूसरा समूह उसके उपभोग को स्वीकार करता है, तो उस पहले समूह द्वारा बलपूर्वक अपनी आहार संबंधी प्राथमिकताओं को दूसरों पर नहीं थोपा जाना चाहिए।

दुर्भाग्यवश, हमारे देश में भोजन की आदतें और आहार संबंधी विकल्प अक्सर भेदभाव, उत्पीड़न और यहां तक कि हिंसा का साधन बन जाते हैं। कई लोग, विशेषकर वे जो शाकाहारी या "शुद्ध" शाकाहारी भोजन का पालन करते हैं, इस मर्म के साथ सुझाव देते हैं कि भारत मुख्य रूप से शाकाहारी है, और जो लोग मांसाहारी हैं वे किसी न किसी रूप में भारतीय संस्कृति और धार्मिक मूल्यों का उल्लंघन कर रहे हैं। इस मानसिकता के कारण मांस खाने वालों को अक्सर हीन, क्रूर या असभ्य समझा जाता है। इस प्रकार की पूर्वाग्रही सोच ने कई बार मांसाहारी समुदायों के ख़िलाफ़ भेदभाव और शत्रुता को बढ़ावा दिया है, जिनमें मुख्य रूप से मुस्लिम, ईसाई, अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) और पूर्वोत्तर तथा तटीय क्षेत्रों के लोग शामिल हैं। ये पूर्वाग्रह केवल सामाजिक विभाजन को गहराते हैं, बल्कि सह-अस्तित्व और पारस्परिक सम्मान के सिद्धांतों को भी कमज़ोर करते हैं।

कार्यक्षेत्र : यद्यपि भारत में जबरन शाकाहार की राजनीति बहुपरती और जटिल है, यह आलेख विशेष रूप से निम्नलिखित प्रमुख पहलुओं को ही संक्षेप में प्रस्तुत करेगा :

1. वैश्विक आहार प्रवृत्ति : दुनिया भर में आहार संबंधी आदतों और प्राथमिकताओं का अवलोकन।

2. भारत में आहार प्रवृत्ति : भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों, सामाजिक समूहों, आर्थिक वर्गों, राज्यों और क्षेत्रों में खाद्य उपभोग की प्रवृत्तियों का विश्लेषण।

3. आहार और पशु बलि पर धार्मिक दृष्टिकोण : भोजन के सेवन, प्रतिबंधों और प्राथमिकताओं तथा पशुबलि के बारे में प्रमुख धर्म क्या कहते हैं, इसकी समझ।

4. क्या मांसाहार बर्बरता का संकेत है? : मांसाहार से जुड़ी रूढ़िवादिता और पूर्वाग्रहों को संबोधित करना।

5. मांसाहारी उद्योग का आर्थिक योगदान : मांस उद्योग के अर्थव्यवस्था में योगदान तथा रोज़गार और व्यापार में इसकी भूमिका का विश्लेषण।

वैश्विक आहार प्रवृत्ति

IPSOS Global Advisory Survey (2018) के अनुसार, विश्व की लगभग 91–92% आबादी मांसाहारी भोजन का सेवन करती है। यह सर्वेक्षण 23 फ़रवरी से 9 मार्च 2018 के बीच 28 देशों के 20,313 वयस्कों पर किया गया था।

शामिल देश : अर्जेंटीना, ऑस्ट्रेलिया, बेल्जियम, ब्राज़ील, कनाडा, चिली, चीन, कोलंबिया, फ्रांस, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन, हंगरी, भारत, इटली, जापान, मलेशिया, मैक्सिको, पेरू, पोलैंड, रूस, सऊदी अरब, सर्बिया, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण कोरिया, स्पेन, स्वीडन, तुर्की, और संयुक्त राज्य अमेरिका।

आहार	परिभाषा	जनसंख्या %
सर्वाहारी	पशु और गैर-पशु उत्पादों का नियमित रूप से सेवन	73%
फ्लेक्सिटेरियन	केवल कभी-कभी मांस या मछली का सेवन	14%
पेस्केटेरियन	गोश्त नहीं खाते, मगर मछली खाते हैं	3%
शाकाहारी	गोश्त नहीं खाते लेकिन अन्य पशु उत्पाद (अंडे, पनीर, दूध) खाते हैं	5%
शुद्ध शाकाहारी	पशु उत्पाद बिल्कुल नहीं खाते	3%

संदर्भ : Ipsos Global Survey on Diets (2018)

भारत में आहार प्रवृत्ति

15-49 आयु वर्ग में मांसाहारी जनसंख्या का प्रतिशत

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण	एनएफएचएस-4 (2016 - 2015)	एनएफएचएस-5 ((2019 - 2021	भिन्नता
पुरुष	78.4%	83.4%	%+5
महिला	70%	70.6%	+0.6%

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (NFHS-5, 2019–2021) के अनुसार, 15–49 वर्ष आयु वर्ग के 83.4% पुरुष और 70.6% महिलाएं दैनिक, साप्ताहिक या कभी-कभार मांसाहारी भोजन करती हैं।

NFHS-4 (2015–16) के अनुसार, इसी आयु वर्ग में 78.4% पुरुष और 70% महिलाएं मांसाहारी भोजन का सेवन करती थीं। 2015 और 2021 के बीच, मांसाहारी भोजन करने वाले भारतीयों का अनुपात बढ़ा है — पुरुषों में 5% और महिलाओं में 0.6% की वृद्धि हुई है।

संदर्भ :

1. NFHS-5 रिपोर्ट (FR375)
2. Indian Express रिपोर्ट
3. NewsClick रिपोर्ट

भारत में विभिन्न समूहों का खाद्य उपभोग पैटर्न

धर्म, जाति और आर्थिक स्थिति भी आहार संबंधी आदतों में भूमिका निभाती है। नीचे दिया गया चार्ट भारत में विभिन्न समुदायों में मांसाहारी आबादी के प्रतिशत का वर्णन करता है।

धार्मिक/ सामाजिक/वर्ग समूह	मांसाहारी (%) जनसंख्या	जो लोग सप्ताह में एक बार मांसाहारी भोजन करते हैं (आयु समूह 15 (– 49 वर्ष	
		पुरुष	महिला
धार्मिक समूह			
ईसाई	99%	80%	78%
मुसलमान	99%	79.5%	70.2%
बौद्ध/नव	97%	74.1%	62.2%
हिन्दू	75%+	52.5%	40.7%
सिख	50%	19.5%	% 7.9
जैन	25%	14.9%	% 4.3
जाति समूह			
अनुसूचित जनजातियाँ	88%	-	-
अनुसूचित जाति	87%	-	-
अन्य	72%	-	-
कक्षा समूह			
सबसे गरीब 20%	90%	-	-
सबसे धनी 20%	70%	-	-

मार्च 2025 में प्रकाशित आंकड़ों और लीना सुरेश की रिपोर्ट के अनुसार, लगभग सभी मुस्लिम (99%), ईसाई (99%) और बौद्ध/नव-बौद्ध (97%) आबादी मांस खाती है। हिंदुओं में तीन-चौथाई से ज़्यादा लोग मांस खाते हैं। जबकि जैन और सिख समुदायों में शाकाहारियों की संख्या सबसे अधिक है। केवल एक-चौथाई जैनों और आधे सिखों ने ही कभी मांस खाया है।

प्रमुख धार्मिक समूहों में मांसाहार की स्थिति (15–49 आयु वर्ग) :

ईसाई—पुरुष : 80%, महिलाएं : 78%, सप्ताह में कम-से-कम एक बार मांसाहारी भोजन करते हैं।

मुस्लिम—पुरुष: 79.5%, महिलाएं : 70.2%

हिंदू—पुरुष : 52.5%, महिलाएं : 40.7%

सिख—पुरुष : 19.5%,महिलाएं : 7.9%

बौद्ध/नव-बौद्ध—पुरुष : 74.1%, महिलाएं : 62.2%

जैन—पुरुष : 14.9%,महिलाएं : 4.3%

अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) में क्रमशः 87% और 88% लोग मांस का उपभोग करते हैं, जबकि अन्य सामाजिक समूहों का यह आंकड़ा 72% है।

मांस का उपभोग सामान्यतः निम्न आय वर्गों में अधिक है। भारत की सबसे ग़रीब 20% आबादी में से लगभग 10 में से 9 लोग मांस खाते हैं, जबकि सबसे धनी 20% आबादी में से लगभग 10 में से 7 लोग मांस खाते हैं।

विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं में यह अंतर अधिक है। ग्रामीण भारत के सबसे धनी समूह की महिलाओं में से लगभग आधी महिलाएं मांस खाती हैं, जबकि तीन-चौथाई पुरुष मांस का सेवन करते हैं।

संदर्भ :

1. भारत में मांस की खपत, लीना सुरेश द्वारा, भारत के लिए डेटा (फ़रवरी 2025) :

https://www.dataforindia.com/meat-consumption/

2. Indian Express रिपोर्ट
3. NewsClick रिपोर्ट
4. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (2019–21), अंतरराष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान

भारत के विभिन्न राज्यों की आहार प्रवृत्ति

केवल चार राज्यों में शाकाहारी लोगों की बहुलता है — पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात।

तटीय राज्यों में शाकाहारी आबादी बहुत कम है, जहां कर्नाटक (12%) और महाराष्ट्र (18%) को छोड़कर 5% से भी कम लोगों ने बताया कि उन्होंने कभी मांस नहीं खाया।

क्रम संख्या	राज्य	मांसाहारी जनसंख्या (अंडा मछली चिकन (मांस	अंडा	मछली	चिकन/ मांस
1	जम्मू एवं कश्मीर	91.80%	87.87%	79.96%	86.03%
2	हिमाचल प्रदेश	63.74%	60.22%	36.47%	53.84%
3	पंजाब	47.33%	45.46%	21.47%	38.79%
4	चंडीगढ़	71.25%	68.48%	44.05%	61.78%
5	उत्तराखंड	79.96%	77.83%	60.91%	71.38%
6	हरयाणा	38.39%	36.99%	17.22%	26.87%
7	दिल्ली	76.67%	74.74%	53.62%	65.03%
8	राजस्थान	39.92%	38.21%	21.53%	27.87%
9	उतार प्रदेश	63.87%	62.42%	52.19%	54.45%
10	बिहार	90.67%	85.80%	87.96%	85.89%
11	सिक्किम	90.71%	88.30%	88.20%	88.52%
12	अरुणाचल प्रदेश	99.65%	98.89%	98.86%	98.40%
13	नगालैंड	99.94%	99.02%	99.12%	99.20%
14	मणिपुर	99.78%	97.21%	99.38%	97.66%
15	मिजोरम	100%	99.52%	97.65%	99.56%
16	त्रिपुरा	99.66%	97.48%	99.46%	98.27%
17	मेघालय	99.79%	97.56%	98.69%	98.69%
18	असम	99.66%	98.45%	99.07%	98.63%
19	पश्चिम बंगाल	99.43%	96.59%	98.60%	97.56%
20	झारखंड	95.00%	92.68%	93.10%	91.91%
21	ओडिशा	95.82%	88.35%	94.36%	89.40%
22	छत्तीसगढ	87.00%	86.24%	82.87%	83.48%
23	मध्य प्रदेश	54.96%	53.00%	43.81%	46.03%
24	गुजरात	50.20%	46.13%	39.52%	44.23%
25	दादरा एवं नगर हवेली और दमन एवं दीव	82.15%	80.02%	80.59%	80.07%
26	महाराष्ट्र	82.25%	79.72%	70.05%	77.69%
27	आंध्र प्र दे श	97.75%	96.51%	92.34%	96.12%
28	कर्नाटक	87.75%	86.35%	74.46%	80.48%
29	गोवा	96.67%	93.28%	95.01%	93.96%
30	लक्षद्वीप	100%	99.35%	100%	99.59%
31	केरल	98.94%	95.00%	97.55%	96.14%
32	तमिलनाडु	97.00%	95.70%	92.25%	92.44%
33	पुडुचेरी	98.79%	96.47%	96.94%	92.34%
34	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	99.84%	97.17%	99.47%	99.56%
35	तेलंगाना	97.64%	96.57%	89.19%	95.59%
36	लद्दाख	93.10%	89.85%	69.51%	83.25%

यह डेटा 15–49 वर्ष के आयु वर्ग के सर्वेक्षण पर आधारित है। सर्वेक्षण में पुरुषों और महिलाओं के लिए आहार उपभोग को अलग-अलग दर्ज किया गया है। समग्र उपभोग की गणना के लिए, केवल उन घरों को शामिल किया गया है जिनमें राज्य-मॉड्यूल के अंतर्गत पुरुष (15–49) और महिलाएं दोनों के आकड़ों को शामिल कर लिया गया है।

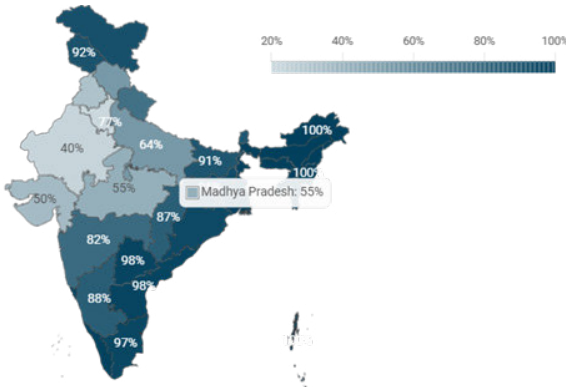

संदर्भ :

1) भारत में मांस की खपत — नलीना सुरेश द्वारा भारत के लिए डेटा (फ़रवरी 2025):
https://www.dataforindia.com/meat-consumption/
2) राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (2019–21), अंतरराष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान

मांसाहारी भोजन और पशुबलि पर धार्मिक दृष्टिकोण

(**नोट :** इस अनुभाग का उद्देश्य केवल जानकारी देना है, न कि किसी विषय पर धार्मिक विवाद खड़ा करना। इसमें विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोणों को बेहतर समझने का प्रयास है। यह ध्यान

रखना आवश्यक है कि इस्लाम के विपरीत, कई अन्य धर्मों में धार्मिक ग्रंथों को हमेशा आस्था का मूल आधार नहीं माना जाता, बल्कि परंपराओं, रीति-रिवाजों और सामाजिक संदर्भों को अधिक महत्व दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, इस अनुभाग में किसी धार्मिक ग्रंथ का उल्लेख अपमानजनक या तर्क-विजय हेतु नहीं किया गया है।)

दुर्भाग्यवश, हमारे देश में व्यापक धारणा यह है कि केवल इस्लाम और ईसाई धर्म ही मांस खाने की अनुमति देते हैं, जबकि अन्य धर्म इसे निषेध करते हैं। इसी प्रकार, कई लोग मानते हैं कि मांस का उपभोग केवल इन्हीं दो समुदायों तक सीमित है। हालांकि, पूर्व में प्रस्तुत किए गए आंकड़े स्पष्ट रूप से बताते हैं कि जैन और सिखों को छोड़कर लगभग सभी धार्मिक समुदायों के अधिकांश लोग मांसाहारी भोजन का सेवन करते हैं। यहां तक कि जैन और सिख समुदायों में भी बड़ी संख्या में लोग किसी न किसी रूप में मांसाहारी भोजन करते हैं। हालांकि आंकड़े विभिन्न समुदायों की आहार संबंधी आदतों को दर्शाते हैं, यह समझना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि प्रमुख भारतीय धर्मों में आहार और भोजन विकल्पों के संबंध में क्या मान्यताएं हैं। आइए अब हम भारत में आहार–विहार से संबंधित धार्मिक सिद्धांतों और सांस्कृतिक मान्यताओं पर दृष्टि डालें :

हिंदू धर्म : कई विद्वानों का मानना है कि हालांकि हिंदू धर्म की सभी शाखाओं में मांसाहार का सेवन सख़्ती से प्रतिबंधित नहीं है, लेकिन मांसाहारी भोजन का सेवन आमतौर पर अवांछनीय माना जाता है। हालांकि अंततः यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप हिंदू धर्म के किस संप्रदाय या परंपरा का पालन करते हैं।

हिंदू धर्म के धार्मिक ग्रंथों में मांसाहार और पशुबलि के पक्ष और विपक्ष—दोनों दृष्टिकोणों में उल्लेख मिलता है।

प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक स्वामी विवेकानंद ने कहा था :

कान्ति साप्ताहिक और कान्ति मासिक के सभी पाठक

कृपया ध्यान दें !

अपना पूरा नाम : .....

पता : .....

पोस्ट ऑफिस : .....

डिस्ट्रिक्ट : .....स्टेट : .....पिन : .....

कांटेक्ट नंबर : .....

नीचे दिए गए व्हाट्सऐप नम्बर पर भेजने की मेहरबानी करें।

धन्यवाद!

व्हाट्सऐप नंबर : 98187 99223

नोट : अपना कांटेक्ट नंबर लिखना न भूलें।

"आप आश्चर्यचकित होंगे कि मैं आपको बताऊं, प्राचीन रीति-रिवाजों के अनुसार, वह व्यक्ति अच्छा हिंदू नहीं माना जाता जो कभी मांस नहीं खाता। कुछ अवसरों पर, उसे एक बैल की बलि देनी पड़ती थी और उसे खाना भी होता था।"

(स्वामी विवेकानंद के संपूर्ण कार्य, खंड 3, प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, 1997, पृष्ठ 536)

विभिन्न हिंदू धार्मिक ग्रंथों से मांसाहारी भोजन और पशुबलि के संदर्भों को पढ़ने के लिए निम्न लिंक पर क्लिक करें :

• वेदों में पशुबलि और मांसाहार

• हिंदू शास्त्रों में पशुबलि

बौद्ध धर्म : हिंदू धर्म की तरह ही बौद्ध विद्वानों में भी मांसाहारी भोजन के सेवन को लेकर मतभेद हैं।

तस्मानिया विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र की वरिष्ठ व्याख्याता अन्या डेली और सोनमार्ग चोन लिखती हैं :

"कुछ बौद्ध पूर्णतः शाकाहारी हैं, और अन्य मांस खाते हैं। दोनों ही अपने दृष्टिकोण को बौद्ध ग्रंथों और शिक्षाओं के आधार पर सही ठहराते हैं। चीन, ताइवान, वियतनाम और कोरिया की महायान बौद्ध परंपराओं में मांसाहार निषिद्ध है।

अन्य परंपराओं, जैसे कुछ थेरवादी परंपराओं और तिब्बती बौद्ध धर्म में, मांसाहार स्वीकार्य है। कुछ परिस्थितियों में इसे स्वास्थ्य या अनुष्ठानिक परंपराओं के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

थेरवाद परंपरा में मांसाहार को सीमित शर्तों के साथ अनुमत किया गया है :

1. भिक्षुओं से अपेक्षा की जाती है कि वे किसी भी विशेष स्वाद की लालसा से रहित हों और समाज द्वारा दिया गया भोजन निष्ठा से स्वीकार करें। यदि कोई आमजन भिक्षु को मांस देता है, तो उसे उसे खाना होगा।

2. मांस तभी स्वीकार्य है जब उसे तीन आधारों पर "शुद्ध" माना जाए :

—भिक्षु ने स्वयं हत्या न देखी हो,

—न ही उसने हत्या के बारे में कुछ सुना हो,

—और उसे यह संदेह न हो कि वह मांस उसके लिए जान-बूझकर मारा गया है।

स्रोत : Can a Buddhist eat meat? It's complicated – The Conversation

डी.एन. झा की पुस्तक Myth of Holy Cow का उल्लेख करते हुए राम पुनियानी लिखते हैं :

"डी.एन. झा ने अपनी पुस्तक 'द मिथ ऑफ़ होली काउ' में दर्शाया है कि कृषि प्रधान समाज के उदय के साथ ही भगवान बुद्ध द्वारा गौहत्या पर प्रतिबंध लगाया गया। इसका मुख्य उद्देश्य

पशुधन को संरक्षित करना था। बौद्ध धर्म के प्रभावस्वरूप सम्राट अशोक ने शाही रसोई के लिए अपने राजाज्ञा में आदेश दिया था कि केवल उन्हीं पशु-पक्षियों को मारा जाए जो रसोई में भोजन हेतु आवश्यक हों। इसका उद्देश्य पशुबलि पर रोक लगाना था, जो ब्राह्मणवादी अनुष्ठानों का हिस्सा थी।"

राम पुनियानी आगे लिखते हैं : "इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ब्राह्मणवाद ने गाय को माता के रूप में प्रस्तुत किया, ताकि यह दिखाया जा सके कि उसे मारना पाप है। कालांतर में ब्राह्मणवाद और इसकी इधर-उधर की राजनीति ने उसे 'माता' का दर्जा दे दिया।"

स्रोत : राम पुनियानी, शाकाहार की राजनीति

जैन धर्म : जहां तक जैन धर्म का प्रश्न है, यह मांसाहारी भोजन के सेवन पर सख्त प्रतिबंध लगाता है, क्योंकि यह किसी भी जीव की हत्या या उसे हानि पहुंचाने को हिंसा का कार्य मानता है। यह सिद्धांत केवल जानवरों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि प्याज और लहसुन जैसे भूमिगत उगने वाले पौधों पर भी लागू होता है, क्योंकि उन्हें उखाड़ने से मिट्टी में रहने वाले कीटों को नुक़सान पहुंच सकता है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इतने कड़े प्रतिबंधों के बावजूद NFHS-5 के अनुसार लगभग 15% जैन पुरुष और 4% से कम जैन महिलाएं मांसाहारी भोजन का सेवन करती हैं।

स्रोत : The Print — NFHS-5 में जैनों की भोजन आदतें

ईसाई धर्म : ईसाई धर्म में, कुछ अपवादों और सीमाओं के साथ, मांसाहारी भोजन को आमतौर पर स्वीकृत माना जाता है। बाइबल कहती है :

"सब चलनेवाले जन्तु तुम्हारा आहार होंगे; मैंने सब कुछ तुम्हें दिया है, जैसे हरी-हरी घास।" (Genesis 9:3)

यह ध्यान देना आवश्यक है कि हालांकि अधिकांश ईसाई संप्रदाय मांसाहार की अनुमति देते हैं, लेकिन नव नियम विशेष रूप से ईसाइयों को उन मूर्तणियों (Gentiles) के लिए बनी हुई सलाहों में यह कहता है कि उन्हें बलि चढ़ाए गए पशुओं का मांस, रक्त, और गला घोंट कर मारे गए जानवरों का मांस नहीं खाना चाहिए।

इस्लाम धर्म : इस्लाम में मांसाहारी भोजन, विशेष परिस्थितियों में, स्पष्ट रूप से स्वीकृत है। क़ुरआन हलाल मांस के उपभोग की अनुमति देता है, लेकिन साथ ही यह भी ज़ोर देता है कि जानवरों के साथ दयालुतापूर्वक व्यवहार किया जाए।

मुसलमानों को कुछ विशेष जानवरों का मांस खाने की अनुमति है, बशर्ते कि उनका वध इस्लामी विधि (हलाल) के अनुसार किया गया हो। इसमें गला काटना और रक्त निकालना शामिल होता है, जिससे तेज़ और मानवीय मृत्यु सुनिश्चित होती है। कुछ जानवरों को स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित किया गया है, जैसे :

• सूअर का मांस,

• और ऐसे जानवर जो प्राकृतिक कारणों से मर गए हों या जिनका वध हलाल मानकों के अनुसार न किया गया हो।

सिख धर्म : सिख धर्म के सर्वोच्च धार्मिक अधिकार अकाल तख़्त ने इस विषय पर स्पष्ट दिशा-निर्देश जारी किए हैं। हालांकि इसमें सभी सिखों के लिए शाकाहार को अनिवार्य नहीं किया गया है, लेकिन यह स्पष्ट किया गया है कि अनुष्ठानिक विधि से तैयार किया गया मांस—जैसे कि क़ुर्बानी का मांस (झटके के विपरीत हलाल मांस)—निषिद्ध है।

ऐसा इसलिए है क्योंकि सिख गुरुओं ने कर्मकांडों को अस्वीकार किया था और उन्हें आध्यात्मिक प्रगति के लिए अनावश्यक माना था।

सरल शब्दों में कहा जाए तो, सिखों को क़ुर्बानी के मांस से बचने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, लेकिन ग़ैर-अनुष्ठानिक वध से प्राप्त मांस खाना व्यक्तिगत पसंद पर छोड़ दिया गया है।

सिख धर्म के बारे में एक आम ग़लतफ़हमी यह है कि इसमें शाकाहार अनिवार्य है। यह विश्वास अक्सर लंगर की शाकाहारी प्रकृति या कुछ सिख समूहों की व्यक्तिगत आहार-परंपराओं के कारण उत्पन्न होता है। लेकिन सिख धर्म अपने अनुयायियों पर शाकाहार थोपता नहीं है।

स्रोत : Shining Sikh — क्या सिख धर्म में शाकाहार ज़रूरी है?

"क्या मांस का सेवन बर्बरता का संकेत है?"

मांस उपभोग को क्रूरता और बर्बरता से जोड़ने का कोई वैज्ञानिक सबूत या तार्किक आधार नहीं है। लाखों सालों से मनुष्य सर्वाहारी रहा है। रैंगहम (2009) के अनुसार, आग पर महारत और उसके बाद मांस पकाना कैलोरी सेवन बढ़ाने में महत्वपूर्ण था, जिससे मस्तिष्क के विकास को बढ़ावा मिला। इसी प्रकार, मिल्टन (1999) का तर्क है कि मांसाहार न केवल आम था, बल्कि प्रारंभिक मानव अस्तित्व और विकास के लिए आवश्यक था। यह धारणा कि मांस का उपभोग स्वाभाविक रूप से बर्बर है, मानव प्रगति में इसकी मौलिक भूमिका की उपेक्षा करती है।

संदर्भ : रैंगहम, आर.डब्ल्यू. (2009). Catching Fire: How Cooking Made Us Human

मिल्टन, के. (1999). "A hypothesis to explain the role of meat-eating in human evolution." Evolutionary Anthropology: Issues, News, and Re-

views, 8(1), 11–21.

आहार संबंधी विकल्प सांस्कृतिक, भौगोलिक और पर्यावरणीय संदर्भों में गहराई से निहित होते हैं। जब मांस का उपभोग नैतिक और टिकाऊ तरीक़े से किया जाता है, तो यह पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होता है। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मनुष्य जैविक रूप से मांस खाने के लिए अनुकूलित है—जैसे कि कुत्ते के दांत जैसी शारीरिक विशेषताएं और पशु प्रोटीन को संसाधित करने में सक्षम पाचन तंत्र।

मांस आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है, जैसे विटामिन B12, आयरन और ओमेगा-3 फैटी एसिड, जिन्हें केवल पौधों पर आधारित आहार से प्राप्त करना कठिन है। कई संस्कृतियों में मांस एक आवश्यक आहार घटक है, जो उन क्षेत्रों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है जहां पौधों पर आधारित भोजन दुर्लभ होता है। इन प्रवृत्तियों को बर्बर कहना वैश्विक विविधताओं और पोषण संबंधी वास्तविकताओं की अवहेलना है।

यह दावा कि मांस का उपभोग स्वाभाविक रूप से बर्बर है, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, जैविक और नैतिक जटिलताओं पर विचार किए बिना किया गया निष्कर्ष है। पूरे इतिहास में मांस का उपभोग मानव अस्तित्व, सांस्कृतिक अनुभव और पारिस्थितिक संतुलन का एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है। नैतिक विचारों को आहार विकल्पों के बारे में सामान्य नैतिक निर्णयों के बजाय मानवीय संदर्भों पर केंद्रित होना चाहिए।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि प्रकृति स्वयं भी खाद्य श्रृंखला पर काम करती है, और मनुष्य एक सर्वहारी के रूप में विकसित हुआ है। मांस उपभोग को क्रूरता कहना सांस्कृतिक, पोषण संबंधी और पारिस्थितिक वास्तविकताओं की उपेक्षा है। इसके अलावा, पौधों की कृषि भी नुकसान पहुंचाती है—जैसे वनों की कटाई, कीटनाशकों का उपयोग और निवास स्थान का विनाश। शाकाहार की राजनीति, पौधों पर आधारित कृषि से होने वाली पर्यावरणीय क्षति और पशुओं की मृत्यु को नज़रअंदाज़ कर देती है।

सच्ची क्रूरता मांस खाने में नहीं है, बल्कि स्थायी प्रवृत्तियों की अवहेलना करने, नैतिकता को अतिसरलीकृत करने, चयनात्मक करुणा के माध्यम से अपराधबोध थोपने में निहित है।

मांसाहारी उद्योग का आर्थिक योगदान

मांसाहारी खाद्य उद्योग पर्याप्त राजस्व उत्पन्न करके, रोज़गार प्रदान करके और कृषि उत्पादन को बढ़ावा देकर भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है। एक शोध के अनुसार, भारत में मांस उत्पादन प्रतिवर्ष 6.3 मिलियन टन होने का अनुमान है तथा उत्पादन की दृष्टि से विश्व में इसका स्थान पांचवां है। भारत विश्व में सबसे बड़ी पशुधन आबादी वाला देश है, जहां लगभग 515 मिलियन पशु हैं।

आईएमएआरसी (IMARC) के अनुसार, भारतीय मांस बाज़ार अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है, जिसका मूल्य 2024

❊ अल्लाह और रसूल की पुकार पर लब्बैक कहो जबकि वो तुम्हें बुलाते हैं उस चीज़ की तरफ जिसमें तुम्हारे लिए ज़िंदगी है। (क़ुरआन) ❊ उस शख़्स से बेहतर किसकी बात हो सकती है जो अल्लाह की तरफ बुलाये और नेक अमल करे और कहे कि मैं मुसलमानों में से हूँ। (क़ुरआन)



हिन्दुस्तान के मशहूर दीनी-इल्मी, फिक्री और म्यारी अख़बार व रसाइल (पत्रिकाओं) का मुताला(अध्ययन)कीजिए

इस सिलसिले में हमारी ख़िदमात हासिल कीजिए :

पेपर – पत्रिका	प्रति कापी	सालाना खरीददारी
✪ कान्ति साप्ताहिक अख़बार	7/-	350/-
✪ कान्ति मासिक पत्रिका	30/-	350/-
✪ दावत उर्दू अख़बार साप्ताहिक	15/-	750/-
✪ जिंदगी–ए–नौ उर्दू महाना	35/-	400/-

सालाना खरीददारी व ग्राहक बनने के लिए राब्ता करें :

मुहम्मद शहज़ाद (उत्तर प्रदेश), मोबाइल नं। : 9808080806

में 55.3 बिलियन अमेरिकी डॉलर था और 2033 तक इसके 114.4 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंचने का अनुमान है। मांस और पोल्ट्री उद्योग लाखों भारतीयों को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, रोज़गार के अवसर प्रदान करते हैं।

कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा), जो वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत आता है, के अनुसार पशु उत्पाद भारत के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये लाखों लोगों की आजीविका के साथ-साथ राष्ट्र की पोषण सुरक्षा में भी योगदान करते हैं।

एफ़एओ (FAO) की 2023 की सांख्यिकी के अनुसार :

• भारत दूध का सबसे बड़ा उत्पादक बनकर उभरा है, जिसने 2021 में विश्व के कुल दूध उत्पादन का 25% योगदान दिया। भारत में दूध का कुल उत्पादन 250.58 मिलियन टन था।

• 2021 में भारत का अंडा उत्पादन 138.3 बिलियन था, जो वैश्विक अंडा उत्पादन का 7.25% रहा।

• उसी वर्ष भारत का मांस उत्पादन 9.77 मिलियन टन रहा, जो वैश्विक मांस उत्पादन का लगभग 3% था।

भारत विश्व में दुग्धारू पशुओं की सबसे बड़ी आबादी वाला देश भी है। 2019 में पशुधन की स्थिति इस प्रकार थी :

• भैंसें : 109.85 मिलियन

• बकरियां : 148.88 मिलियन

• भेड़ें : 74.26 मिलियन

2012 से 2019 के दौरान वृद्धि दर :

• भेड़ों की संख्या में 14.13% की वृद्धि

• बकरियों में 10.14% की वृद्धि

• भैंसों में 1.06% की वृद्धि

(**संदर्भ :** 20वीं पशुधन जनगणना - 2019, D.A.H.D.)

पशु उत्पादों का निर्यात भारतीय कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। निर्यात किए जाने वाले प्रमुख पशु उत्पादों में भैंस का मांस, भेड़-बकरी का मांस, पोल्ट्री उत्पाद, पशु आंतें, दूध और दुग्ध उत्पाद, तथा शहद शामिल हैं।

2023-24 में भारत का पशु उत्पादों का कुल निर्यात 4,543.52 मिलियन अमेरिकी डॉलर रहा, जिसमें प्रमुख उत्पादों का योगदान इस प्रकार रहा: (**संदर्भ :** डीजीसीआईएस-DGCI&S)

वस्तु	**वित्त वर्ष 2024 में निर्यात (मिलियन, अमेरिकी डॉलर में)**
भैंस का मांस	3740.53
भेड़/बकरी का मांस	77.68
अन्य मांस	0.82
पोल्ट्री उत्पाद	184.58
डेयरी उत्पाद	272.64
पशु आवरण	48.12
प्रसंस्कृत मांस	2.48
कैसिइन	18.22
एल्बुमिन (अंडे और दूध)	20.93
प्राकृतिक शहद	177.52

संदर्भ : https://apeda.gov.in/AnimalProducts

भारत के शीर्ष गोमांस निर्यातक

यह एक ग़लत धारणा है कि केवल मुसलमान ही गोमांस उद्योग में लगे हुए हैं। तथ्य यह है कि भारत के अधिकांश शीर्ष गोमांस उद्योगों का स्वामित्व ग़ैर-मुसलमानों के पास है। देश के प्रमुख गोमांस निर्यातकों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है :

एलबा सन्स प्राइवेट लिमिटेड – रशीद सोहराब कदीमी

अल-कबीर एक्सपोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड – शतीश और अतुल सभरवाल

एम.के.आर. फूड्स फूड एक्सपोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड – मदन अबॉट

पी.एम.एल. इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड – ए.एस. बिंद्रा

अर्बन एक्सपोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड – सुनील कपूर

निष्कर्ष : निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि न तो विश्व और न ही भारत मुख्य रूप से शाकाहारी हैं। भारत सहित, विश्व की अधिकांश जनसंख्या मांसाहारी भोजन का उपभोग करती है। भारत और विश्व के प्रमुख धर्मों एवं संस्कृतियों में मांस के सेवन और पशु बलि की अनुमति है। मांस उपभोग को हिंसा, क्रूरता या बर्बरता से स्वाभाविक रूप से जोड़ने का कोई ठोस प्रमाण नहीं है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से, मांसाहारी खाद्य उद्योग पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने, मानव पोषण को संपूर्ण बनाने तथा अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देने के लिए आवश्यक है।

वास्तविक मुद्दा यह नहीं है कि आहार शाकाहारी है या मांसाहारी, बल्कि मुद्दा यह है कि कुछ समूहों द्वारा बल या दबाव के माध्यम से अपनी आहार संबंधी प्राथमिकताओं को दूसरों पर थोपने की प्रवृत्ति है। यह समझना आवश्यक है कि मांसाहार प्रवृत्तियों को कम करके शाकाहार को बढ़ावा देने से सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक ध्रुवीकरण होता है।

इसलिए, अब समय आ गया है कि जबरन शाकाहार की राजनीति या शाकाहार की सर्वोच्चता की धारणा को अस्वीकार कर दिया जाए। इसके बजाय, जब आहार विकल्पों की बात आती है, तो हमें स्वतंत्रता, विविधता और आपसी सम्मान के सिद्धांतों को अपनाना चाहिए। ■■

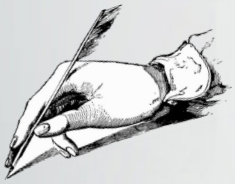

कविता

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है

दुष्यंत कुमार

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।

एक चिनगारी कहीं से ढूंढ़ लाओ दोस्तो,
इस दीये में तेल से भीगी हुई बीती तो है।

एक खंडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी,
आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है।

ए चादर सांझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अंधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है।

निर्वचन मैदान में लेटी हुई है जो नदी,
पत्थरों से, ओट में जो-जाके बतियाती तो है।

■■



एक बीमारी की दूरी पर खड़ी है बर्बादी

“भारत का आम आदमी अपनी ग़रीबी से सिर्फ़ एक मेडिकल इमरजेंसी दूर है।”

हाल में ही आई जीरोधा के को-फाउंडर नितिन कामथ की यह टिप्पणी कोई भावनात्मक व्यथा नहीं, बल्कि देश के करोड़ों परिवारों की सच्चाई का तीखा बयान है। यह उस व्यवस्था पर सीधा प्रश्न है, जो न तो बीमारी को रोक पा रही है और न ही इलाज का बोझ उठा पा रही है। इस देश में जहां आर्थिक विकास की रफ़्तार के क़िस्से सुनाए जाते हैं, वहीं एक मामूली ऑपरेशन या कैंसर की शुरुआती जांच भी किसी परिवार को क़र्ज़ के जाल में धकेल सकती है।

भारतीय मध्यवर्ग, जो कभी देश की रीढ़ माना जाता था, आज स्वयं व्यवस्था के बोझ तले दबता जा रहा है। स्वास्थ्य सेवाओं की दुर्गमता, इलाज की बढ़ती क़ीमतें और बीमा प्रणाली की

मंथन



डॉ.प्रदीप कुमार

अविश्वसनीयता—ये सभी बीमार होकर मध्यवर्ग को 'ग़रीब' बना रहे हैं।

स्वास्थ्य सेवा किसी नागरिक का मौलिक अधिकार है। संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत 'जीवन के अधिकार' में 'स्वस्थ जीवन' भी शामिल है, लेकिन व्यवहार में भारत में स्वास्थ्य सेवा एक महंगी सेवा बनकर रह गई है, जो अधिकतर लोगों की पहुंच से बाहर है।

नेशनल हेल्थ अकाउंट्स (NHA) 2023 के अनुसार, भारत में स्वास्थ्य पर कुल व्यय का लगभग 48 प्रतिशत 'आउट ऑफ़ पॉकेट' यानी सीधे आम आदमी की जेब से होता है। यह आंकड़ा बताता है कि सरकार की ओर से स्वास्थ्य सेवाओं पर जितना ख़र्च किया जा रहा है, उससे कहीं अधिक बोझ आम नागरिक पर आ रहा है। यही वह स्थिति है जहां एक मेडिकल इमरजेंसी एक मध्यमवर्गीय परिवार की वर्षों की

जमा-पूंजी को मिनटों में समाप्त कर देती है।

सरकारी और निजी स्वास्थ्य बीमा योजनाएं जैसे आयुष्मान भारत, आरोग्य बीमा, या विभिन्न निजी स्वास्थ्य बीमा उत्पाद—काग़ज़ पर जितनी आकर्षक लगती हैं, ज़मीनी हक़ीक़त में उतनी ही सीमित और जटिल हैं।

आयुष्मान भारत योजना का कवरेज मुख्यतः ग़रीब और बीपीएल श्रेणी तक सीमित है। मध्यवर्ग इस योजना की सीमा से बाहर है और निजी बीमा कंपनियों के भरोसे हैं, लेकिन इन बीमा कंपनियों की पॉलिसियां इतनी जटिल, उनकी 'exclusions' इतनी व्यापक और 'pre-approval' की प्रक्रिया इतनी कठिन है कि ज़रूरत के समय अधिकांश मामलों में वे लाभ नहीं पहुंचा पातीं।

साथ ही, बीमा कवरेज की राशि भी इलाज की लागत के मुक़ाबले बेहद कम होती है। एक गंभीर बीमारी जैसे हार्ट सर्जरी या कैंसर का इलाज 8-15 लाख रुपये तक पहुंच सकता है, जबकि अधिकतर बीमा योजनाओं का कवरेज 3-5 लाख रुपये तक सीमित होता है।

देश के शहरी इलाक़ों में निजी अस्पतालों की चमचमाती इमारतें आधुनिक चिकित्सा की तस्वीर पेश करती हैं, लेकिन ये व्यवस्था अब 'किराये के तिजारती संस्थान' बन चुकी है। इन अस्पतालों में मुनाफ़ाख़ोरी, ग़ैर-ज़रूरी जांचें और महंगे पैकेज बेचने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

जब कोई परिवार हताश होकर इन निजी अस्पतालों का रुख़ करता है, तो वहां के काउंटर पर पहला सवाल यह होता है कि "बीमा है या कैश?" बीमारी की गंभीरता या मानवीय पीड़ा से पहले, इन संस्थानों की प्राथमिकता व्यावसायिक लाभ होती है। कई बार देखा गया है कि जीवन रक्षक उपचार शुरू करने से पहले ही एडवांस राशि की मांग की जाती है। ऐसा व्यवहार देश की संवेदनहीन होती जा रही चिकित्सा व्यवस्था का परिचायक है।

जहां एक ओर निजी अस्पताल महंगे हैं, वहीं सरकारी अस्पतालों की स्थिति

नेशनल हेल्थ अकाउंट्स (NHA) 2023 के अनुसार, भारत में स्वास्थ्य पर कुल व्यय का लगभग 48 प्रतिशत 'आउट ऑफ पॉकेट' यानी सीधे आम आदमी की जेब से होता है। यह आंकड़ा बताता है कि सरकार की ओर से स्वास्थ्य सेवाओं पर जितना खर्च किया जा रहा है, उससे कहीं अधिक बोझ आम नागरिक पर आ रहा है। यही वह स्थिति है जहां एक मेडिकल इमरजेंसी एक मध्यमवर्गीय परिवार की वर्षों की जमा-पूंजी को मिनटों में समाप्त कर देती है।

बेहद चिंताजनक है। एक AIIMS जैसे संस्थान को छोड़ दें, तो देश के अधिकांश सरकारी अस्पतालों में स्टाफ़ की कमी, उपकरणों की जर्जर स्थिति, दवाइयों की अनुपलब्धता और बुनियादी साफ़-सफ़ाई का अभाव आम बात है।

मरीज़ों को महीनों अपॉइंटमेंट नहीं मिलते। ऑपरेशन के लिए ज़रूरी संसाधनों की कमी है और रोगी अक्सर एक बिस्तर पर दो-दो रोगी सोते हैं। इन परिस्थितियों में आम आदमी के लिए सरकारी अस्पतालों पर भरोसा करना बेहद कठिन हो गया है। परिणामस्वरूप, लोग क़र्ज़ लेकर निजी अस्पतालों की ओर भागते हैं—और वहीं पर वे आर्थिक आपदा के शिकार बनते हैं।

मध्यवर्ग भारत का वह तबक़ा है जो न तो सरकारी सब्सिडी का लाभ उठा सकता है, और न ही निजी चिकित्सा व्यवस्था की ऊंची लागत वहन कर सकता है। यह वर्ग टैक्स देता है, बीमा प्रीमियम भरता है, और हर बार भरोसा करता है कि सिस्टम उसकी मदद करेगा, लेकिन जब संकट आता है, तो यह वर्ग सबसे अधिक असहाय होता है।

एक छोटी-सी बीमारी के इलाज के लिए जब कोई ₹500 की जांच करवाता है, ₹1500 डॉक्टर की फ़ीस देता है, और ₹2000 की दवाइयां ख़रीदता है—तो सोचिए कैंसर, हार्ट अटैक, डायलिसिस या ब्रेन सर्जरी जैसे मामलों में उसकी स्थिति क्या होगी? एक गंभीर बीमारी जीवन नहीं, संपत्ति भी खा जाती है।

NSSO की रिपोर्ट (2018) के अनुसार, भारत में 60 प्रतिशत से अधिक स्वास्थ्य ख़र्च लोन या संपत्ति बेचकर किया जाता है। 2024 तक यह अनुपात और भी ख़राब हो गया है। ग्रामीण इलाक़ों में यह आंकड़ा 70 प्रतिशत से अधिक है। मध्यवर्गीय परिवारों के लिए स्वास्थ्य संकट का अर्थ होता है—गहने गिरवी रखना, बच्चों की पढ़ाई रोकना, रिटायरमेंट सेविंग्स तोड़ना या किसी रिश्तेदार से क़र्ज़ लेना।

इनमें से अधिकांश लोग बैंकों से क़र्ज़ नहीं ले सकते, क्योंकि मेडिकल लोन का कोई ठोस और सरल ढांचा अभी विकसित नहीं हुआ है। परिणामस्वरूप, वे साहूकारों या निजी लोन एप्स की चपेट में आ जाते हैं, जो बाद में आर्थिक शोषण का कारण बनते हैं।

भारत अपने GDP का लगभग 1.28 प्रतिशत ही स्वास्थ्य पर ख़र्च करता है, जो वैश्विक औसत (6 प्रतिशत) से बेहद कम है। सरकार को इस हिस्से को कम से कम 3-4 प्रतिशत तक बढ़ाना होगा ताकि स्वास्थ्य सेवा की पहुंच और



गुणवत्ता में सुधार हो सके।

ऐसे में ज़रूरी है कि सरकार को मध्यवर्ग को भी ध्यान में रखकर अपनी योजनाएं बनानी चाहिए। आयुष्मान भारत जैसी योजनाओं का विस्तार करते हुए, एक 'मध्यवर्गीय स्वास्थ्य सुरक्षा योजना' बनानी चाहिए, जिसमें स्वास्थ्य बीमा, मुफ़्त जांच और सरकारी अस्पतालों में विशेष कोटा हो।

स्वास्थ्य को व्यापार नहीं, सेवा मानकर निजी अस्पतालों की दरों, जांचों और व्यवहार पर सख़्त नियंत्रण आवश्यक है। एक 'हेल्थ रेगुलेटरी अथॉरिटी' का गठन किया जाना चाहिए, जो अस्पतालों के शुल्क और प्रक्रियाओं की निगरानी करे। बीमा कंपनियों की शर्तों को सरल और पारदर्शी बनाया जाए। क्लेम प्रक्रिया को तेज़, डिजिटल और रोगी के पक्ष में लाया जाए।

ग्रामीण और अर्धशहरी क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को टेक्नोलॉजी, दवाओं और डॉक्टरों से सुसज्जित करना आवश्यक है। यदि प्राथमिक स्तर पर ही इलाज संभव हो, तो महंगे टर्शियरी इलाज की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी।

जब एक समाज में चंद साधारण बीमारियां किसी को कंगाल बना दें, तो यह सिर्फ़ स्वास्थ्य संकट नहीं, बल्कि सिस्टम फेल्योर है। भारत की बढ़ती अर्थव्यवस्था, तकनीकी तरक़्क़ी और डिजिटल हेल्थ इन्फ्रास्ट्रक्चर के दावों के बीच, एक साधारण परिवार का किसी बीमारी के कारण आर्थिक रूप से टूट जाना एक कलंक है।

नितिन कामथ का कथन केवल एक चेतावनी नहीं, बल्कि एक नैतिक प्रश्न भी है—क्या हम एक ऐसे देश में जी रहे हैं, जहां जीवन बचाने के लिए घर बेचना पड़ता है? यदि इसका उत्तर 'हां' है, तो यह देश की नीतियों, उसकी संवेदना और उसके न्याय-बोध पर सबसे बड़ा प्रश्नचिह्न है।

हमें यह तय करना होगा कि स्वास्थ्य सेवा केवल एक नीति का हिस्सा नहीं, बल्कि मानव गरिमा का प्रश्न है। और जब तक यह गरिमा हर भारतीय को नसीब नहीं होती, तब तक हम एक बीमार राष्ट्र के नागरिक ही रहेंगे। ■■

NSSO की रिपोर्ट (2018) के अनुसार, भारत में 60 प्रतिशत से अधिक स्वास्थ्य खर्च लोन या संपत्ति बेचकर किया जाता है। 2024 तक यह अनुपात और भी खराब हो गया है। ग्रामीण इलाकों में यह आंकड़ा 70 प्रतिशत से अधिक है। मध्यवर्गीय परिवारों के लिए स्वास्थ्य संकट का अर्थ होता है—गहने गिरवी रखना, बच्चों की पढ़ाई रोकना, रिटायरमेंट सेविंग्स तोड़ना या किसी रिश्तेदार से कर्ज लेना।



विज्ञान, समाज और शासन : तीनों की साझी ज़िम्मेदारी

पर्यावरण



जितेंद्र गौतम

हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' मनाया गया, लेकिन इस बार का विषय एक ऐसे संकट के इर्द-गिर्द रहा, जिसने पूरी पृथ्वी को एक अदृश्य मगर असहनीय बोझ से ढक दिया है—प्लास्टिक प्रदूषण। विश्व पर्यावरण दिवस इस बार "प्लास्टिक-मुक्त पृथ्वी" को समर्पित है। यह सिर्फ़ एक प्रतीकात्मक आह्वान नहीं, बल्कि समय की सख़्त मांग है। प्लास्टिक ने जिस तरह हमारे जीवन के हर हिस्से को घेर लिया है, उसने इसे एक अभिशाप के रूप में स्थापित कर दिया है। घर की रसोई से लेकर अंतरिक्ष स्टेशन तक, खेतों की मिट्टी से लेकर महासागरों की गहराई तक, और अब तो हमारे रक्त प्रवाह में भी प्लास्टिक के माइक्रो कण पाए जाने लगे हैं।

यह स्थिति अचानक नहीं आई, बल्कि हमारे विकास और उपभोग की उस अंधी दौड़ का परिणाम है, जिसमें सुविधा, लागत और त्वरित लाभ ही प्राथमिकता बन गए हैं।

आज प्लास्टिक हमारे जीवन के हर पहलू में प्रवेश कर चुका है—भोजन, वस्त्र, घर, वाहन, चिकित्सा, संचार, कृषि और उद्योग। उसकी सर्वसुलभता ने उसे इतना लोकप्रिय बना दिया कि हमने यह सोचना तक छोड़ दिया कि इसके विकल्प भी हो सकते हैं। यह विडंबना ही है कि जो आविष्कार प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को रोकने के लिए हुआ था, वही आज प्रकृति को सबसे अधिक दूषित कर रहा है।

19वीं सदी के अंत में जब प्लास्टिक पहली बार सिंथेटिक रूप में विकसित हुआ, तब इसे मानव जाति की प्रौद्योगिकीय विजय माना गया। लकड़ी, कांच, धातु जैसे महंगे और सीमित संसाधनों की जगह प्लास्टिक ने ले ली। किंतु कुछ दशकों में ही यह चमत्कार अभिशाप में बदल गया।

आज स्थिति यह है कि धरती के किसी भी हिस्से—चाहे वह उत्तरी ध्रुव की बर्फ़ हो या अंटार्कटिका की गहराइयां, समुद्र की अतल गहराइयां हों या पर्वत की चोटियां—प्लास्टिक की उपस्थिति को वैज्ञानिक प्रमाणित कर चुके हैं। सबसे चिंताजनक बात यह है कि यह केवल पर्यावरण में नहीं, हमारे रक्त और ऊतकों में भी घुस चुका है। माइक्रोप्लास्टिक और नैनो-प्लास्टिक के कण हमारे ख़ून में मिल चुके हैं। क्या यह कोई अलार्म नहीं, जो हमें चेताने के लिए पर्याप्त हो?

प्लास्टिक का सबसे बड़ा विरोधाभास यह है कि यह जितना विकासशील समाजों के लिए सहायक रहा है, उतना ही उनके विनाश का कारण भी बन रहा है। झुग्गियों में रहने वाले लाखों लोग छत की चादर से लेकर खाने के पैकेट तक, प्लास्टिक पर ही आश्रित हैं। इसे अचानक प्रतिबंधित कर देना, उन पर एक सामाजिक और आर्थिक हमला होगा। वहीं दूसरी ओर यह भी सच है कि प्लास्टिक-जनित कचरे का सबसे बड़ा बोझ भी यही समाज उठाते हैं—गंदे नालों में बहती थैलियां, जल-जमाव और बीमारियां, इनकी प्रत्यक्ष मार भी इन्हें ही झेलनी पड़ती है।



भारत ने 2022 में सिंगल यूज़ प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगाया था, लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त यह है कि आज भी बाज़ारों में प्लास्टिक थैलियां खुलेआम बिक रही हैं। इसका कारण मात्र क़ानून का अभाव नहीं, बल्कि हमारे व्यवहार की वह जड़ मानसिकता है, जो "यूज़ एंड थ्रो" की आदत से संचालित होती है। जब तक हम इस मनोवृत्ति को नहीं बदलेंगे, तब तक कोई भी नीति कारगर नहीं होगी।

प्लास्टिक स्वयं में समस्या नहीं है, समस्या है उसका कुप्रबंधन। वह प्लास्टिक जिसे रिसाइकिल किया जा सकता था, वह हमारे नालों, नदियों और खेतों में बिखरा पड़ा है। यदि हम इसे व्यवस्थित रूप से एकत्र करें, छंटाई और पुनः उपयोग करें, तो हम इसके 60 प्रतिशत से अधिक कचरे को नियंत्रित कर सकते हैं।

यहां जापान जैसे देशों से सीखा जा सकता है, जहां कचरा प्रबंधन को नागरिक कर्तव्य माना गया है। वहीं जर्मनी और स्वीडन जैसे देशों में कचरा न केवल रिसाइकिल होता है, बल्कि ऊर्जा उत्पादन में भी उपयोग किया जाता है। अमेरिका ने माइक्रोप्लास्टिक हटाने के लिए उन्नत जल छानक तकनीकों का विकास कर लिया है। भारत जैसे देश में यदि स्थानीय स्तर पर तकनीक और नागरिक सहभागिता का संयोजन हो, तो यह लड़ाई जीती जा सकती है।

प्लास्टिक संकट के समाधान के लिए वैज्ञानिकों को ऐसे रसायनों और प्रक्रियाओं का विकास करना होगा, जिससे प्लास्टिक को अन्य उपयोगी पदार्थों में बदला जा सके। जैव-अपघट्य प्लास्टिक (biodegradable plastic) पर गहन शोध हो चुका है, लेकिन अब इसे व्यावसायिक और सुलभ स्तर पर लाना होगा।

वहीं शासन को भी मात्र प्रतिबंध के भरोसे नहीं बैठना चाहिए। उसे कचरा प्रबंधन, रीसाइक्लिंग उद्योग को प्रोत्साहन और कड़े नियमन के साथ जुड़ी व्यावहारिक नीतियां बनानी होंगी। स्थानीय निकायों को सशक्त करना होगा और सामुदायिक भागीदारी को प्राथमिकता देनी होगी।

समाज की भी भूमिका उतनी ही अहम है। उपभोक्ता यदि यह तय कर ले कि वह थैली नहीं लेगा, बोतल नहीं ख़रीदेगा, डिस्पोज़ल का उपयोग नहीं करेगा, तो आपूर्ति अपने आप नियंत्रित हो जाएगी। बाज़ार वहीं चलता है, जहां मांग हो।

हमारा संकट केवल प्लास्टिक तक सीमित नहीं है। यह एक प्रतीक है—उस दृष्टिकोण का, जो प्रकृति को केवल उपभोग की वस्तु समझता है। यही मानसिकता वनों की कटाई, जल स्रोतों का प्रदूषण और जैव विविधता की क्षति का कारण बनी है। प्लास्टिक को हटाना है, तो प्रकृति के साथ हमारे रिश्ते को भी बदलना होगा। आज हमने प्रकृति को सुधारने की जगह बिगाड़ने का ही कार्य किया है।

Re-use और Recycle दो ऐसे शब्द हैं जो इस संकट का मूल समाधान हैं। जब तक हम हर वस्तु को पुनः उपयोग के लिए नहीं बनाएंगे, तब तक उसका जीवनकाल सीमित और कचरा सुनिश्चित रहेगा। कपड़े की थैली, धातु के बर्तन, मिट्टी के कुल्हड़, कांच की बोतलें —ये सब हमारी पारंपरिक जीवनशैली का हिस्सा रहे हैं, जिनसे हमने मुंह मोड़ लिया।

प्लास्टिक से मुक्ति के लिए हमें

प्लास्टिक से मुक्ति तभी संभव है जब हम "यूज़ एंड थ्रो" की मानसिकता को त्याग कर "यूज़ एंड रिवाइव" की चेतना को अपनाएंगे। असल बदलाव भीतर से शुरु होता है। जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि पृथ्वी हमारी बपौती नहीं, एक अमानत है– तब तक न प्लास्टिक हटेगी न प्रदूषण रुकेगा। इस बार का पर्यावरण दिवस केवल एक दिन नहीं, एक दिशा बन जाए, यही हमारे पर्यावरण के लिए सबसे बड़ी सार्थकता होगी।



शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में जागरूकता अभियान चलाने होंगे। विद्यालयों से लेकर पंचायतों तक, युवाओं से लेकर गृहणियों तक—हर वर्ग को प्लास्टिक के विरुद्ध इस मुहिम में शामिल करना होगा। यह केवल पर्यावरण की मुहिम नहीं, बल्कि जीवन की पुनर्रचना का आह्वान है।

पर्यावरण दिवस हमें यह स्मरण कराता है कि हम इस पृथ्वी के मालिक नहीं, उत्तराधिकारी हैं। यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम अपने आने वाली पीढ़ियों को वह धरती सौंपें, जो जीवित हो, हरित हो और पवित्र हो।

प्लास्टिक से मुक्ति कोई एक दिन का कार्य नहीं, बल्कि यह एक लंबी और सतत प्रक्रिया है—विचार, व्यवहार और व्यवस्था तीनों में परिवर्तन लाए बिना हम इसे नहीं पा सकते। हमें एक ऐसे समाज की कल्पना करनी होगी, जो उपयोग की सुविधा में नहीं, उत्तरदायित्व में विश्वास रखता हो।

प्लास्टिक से मुक्ति तभी संभव है जब हम "यूज़ एंड थ्रो" की मानसिकता को त्याग कर "यूज़ एंड रिवाइव" की चेतना को अपनाएंगे। अस्ल बदलाव भीतर से शुरू होता है। जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि पृथ्वी हमारी बपौती नहीं, एक अमानत है—तब तक न प्लास्टिक हटेगी न प्रदूषण रुकेगा। इस बार का पर्यावरण दिवस केवल एक दिन नहीं, एक दिशा बन जाए, यही हमारे पर्यावरण के लिए सबसे बड़ी सार्थकता होगी। ■■

संघर्ष की समझ



दृष्टिकोण

अबरार हसन

"अल्लाह किसी क़ौम की हालत नहीं बदलता जब तक वह ख़ुद अपनी हालत न बदले।" (क़ुरआन, 13:11)

यह एक आयत नहीं, एक चेतावनी है। यह भावनात्मक दिलासा नहीं, बल्कि ऐतिहासिक घोषणा है कि तक़दीरें आसमान से नहीं टपकतीं—वे ज़मीन पर सींचे गए इरादों से बनती हैं। आज जब भारत के भीतर एक पूरी आबादी अपने हक़, पहचान और अस्तित्व के संकट से जूझ रही है—तो सवाल यह नहीं है कि सत्ता क्या कर रही है; अस्ल सवाल यह है कि समाज ख़ुद अपने लिए क्या कर रहा है?

हम एक ऐसे दौर में जी रहे हैं जहां संवैधानिक गारंटी के बावजूद कई समुदायों को हाशिये पर धकेला जा रहा है। मुसलमानों, दलितों, आदिवासियों और आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए "इंसाफ़" अब एक दूर की चीज़ बनता जा रहा है। संसद में प्रतिनिधित्व सिमट गया है, अदालतों में न्याय लंबित है और मीडिया में आवाज़ें गुम हो चुकी हैं। पर क्या यह सब अचानक हुआ? नहीं।

यह धीरे-धीरे हुआ, जब हम सिर्फ़ उम्मीद करते रहे, संघर्ष नहीं। जब हमने अपने बच्चों को केवल नौकरी के लिए पढ़ाया, सोचने के लिए नहीं। जब हमने अपने समाज को केवल इबादतगाहों में बांध दिया, इंसाफ़ की राह पर चलने का हौसला नहीं दिया। जब हमने वोट डाला, मगर अपनी सियासी चेतना को गिरवी रख दिया।

सच्चाई यह है कि अब समय शिकायत का नहीं, आत्म-मंथन का है। हम बार-बार कहते हैं कि हमें सताया गया, मगर यह नहीं पूछते कि हमने क्या तैयारियां की थीं? कौन-सी सोच, कौन-सा नज़रिया हमने नई पीढ़ी को दिया?

"अल्लाह किसी क़ौम की हालत नहीं बदलता जब तक वह ख़ुद अपनी हालत न बदले"—यह एक नैतिक उसूल भी है और सामाजिक दर्शन भी। यह हमें बताता है कि जब तक हम अपने सोचने, जीने और लड़ने के तरीक़ों में परिवर्तन नहीं लाएंगे, तब तक हमारी बाहरी दुनिया में कोई स्थायी बदलाव नहीं आएगा।

हमारे समाज की सबसे बड़ी ज़रूरत आज तालीम है—मगर केवल धार्मिक शिक्षा नहीं, बल्कि दुनिया को समझने वाली समकालीन, तकनीकी और वैचारिक शिक्षा।

हमें वकील चाहिए जो अदालतों में आवाज़ बनें। पत्रकार चाहिए जो सत्ता की आंखों में आंखें डाल सकें। डॉक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर, अर्थशास्त्री चाहिए जो सिर्फ़ नौकरी न करें, बल्कि क़ौमी रूह को मज़बूत करें।

यह तभी होगा जब हम "किराये की तालीम" से आगे बढ़कर "मालिकाना

तालीम" की तरफ़ बढ़ें—अर्थात् शिक्षा पर हमारा नियंत्रण हो, न कि हम दूसरों की बनायी किताबों से अपने बच्चों का भविष्य तय करें।

क्या कारण है कि हम आज भी आर्थिक रूप से सबसे कमज़ोर तबक़ों में हैं? हमारे व्यापारी धीरे-धीरे हाशिये पर क्यों जा रहे हैं? हमारी संपत्तियां क्यों बिक रही हैं? और सबसे अहम—हम किसी आर्थिक नीति या आंदोलन में नेतृत्व की भूमिका में क्यों नहीं हैं?

जब तक हमारी रोज़ी-रोटी दूसरों के रहमोकरम पर होगी, तब तक हमारी आवाज़ भी बंधक रहेगी।

छोटे व्यवसाय, सामाजिक सहकार, कौशल विकास और आर्थिक सहयोग के नए मॉडल खड़े करने होंगे। सिर्फ़ दुआओं से रोटी नहीं मिलती—उसके लिए मेहनत, योजना और मिल-जुलकर काम करने की ज़रूरत होती है।

राजनीति को हम "गंदी चीज़" कहकर छोड़ देते हैं, और फिर गंदगी की शिकायत करते हैं। यह रवैया अब नहीं चलेगा। जब तक हम अपने मुद्दों को राजनीतिक मंच तक नहीं पहुंचाएंगे और सत्ता के खेल को समझते हुए उसमें हिस्सेदारी नहीं करेंगे—हमारा भविष्य सिर्फ़ नारों में जिएगा, ज़मीन पर नहीं।

हमें जनप्रतिनिधियों से सवाल पूछने होंगे। हमें स्थानीय स्तर पर मज़बूत नेतृत्व खड़ा करना होगा, जो हर वंचित वर्ग की आवाज़ हो। सेकुलरिज़्म की रक्षा सिर्फ़ संविधान से नहीं होती, बल्कि उस संविधान को समझने और जीने वाली नागरिक चेतना से होती है।

क़ौमों को तोड़ने का सबसे आसान तरीक़ा है—उन्हें आपस में लड़ाना। अफ़सोस की बात यह है कि यह खेल हमारे बीच भी चल रहा है—जातिगत विभाजन और संगठनात्मक ईर्ष्या ने हमारी ऊर्जा को अंदर ही अंदर खा लिया है।

यह मत कहिए कि हम क्या कर सकते हैं। यही सोच है जो हमें कमज़ोर बनाती है। अस्ल बात यह है कि आप अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी उठाएं—अपने बच्चों की तालीम, अपने कारोबार की योजना, अपने समाज की एकता और अपने हक़ की आवाज़ के लिए संघर्ष करें।

तक़दीरें तब बदलती हैं जब इरादे बदलते हैं। और इरादे तब बदलते हैं जब इंसान अपने अंदर झांककर ख़ुद से सवाल करता है। आज यही समय है—ख़ुद से सवाल करने का, ख़ुद को बदलने का और एक नई राह बनाने का।

यह राह नारेबाज़ी से नहीं, योजना से बनेगी। यह संघर्ष प्रतिक्रियाओं से नहीं, दूरदर्शी सोच और सामूहिक प्रयासों से जीता जाएगा। हमारे पास अब यह कहने का वक़्त नहीं है कि 'हम अकेले क्या कर सकते हैं', बल्कि यह सोचने और करने का वक़्त है कि 'हम सब मिलकर क्या कर सकते हैं'। इतिहास गवाह है कि जब-जब इंसान ने अपनी क़ाबिलियत और हिम्मत को पहचाना है, तब-तब उसने समय के सबसे सख़्त फ़ैसलों को भी बदल डाला है।



अब यह समझने की ज़रूरत है कि हमारा संघर्ष केवल अस्तित्व का नहीं, आत्म-संवर्धन का है। हमें सिर्फ़ ज़िंदा रहने की नहीं, इज़्ज़त से जीने की लड़ाई लड़नी है। वह इज़्ज़त जो शिक्षा से आती है, आर्थिक आत्म-निर्भरता से आती है, और सियासी भागीदारी से मज़बूत होती



है।

आज हर मोहल्ला, हर बस्ती, हर क़स्बा एक नया केंद्र बन सकता है जहां से चेतना की लहर उठे। हमें अपनी मस्जिदों, इमामबाड़ों और मदरसों को भी सामाजिक जागरूकता के केंद्रों में बदलना होगा। वहां केवल इबादत नहीं, इंसाफ़ और इल्म की बातें भी हों। हमें ज़रूरत है ऐसे मंचों की, जहां लोग मिलकर अपने इलाक़ों की ज़मीनी समस्याओं का समाधान निकालें—तालीम, रोज़गार, स्वास्थ्य और क़ानूनी मदद के सवालों पर ठोस योजनाएं बनाएं।

यह समय "मजबूरी में जीने" का नहीं, "मालिकाना हक़ से जीने" का है। इसके लिए हमें अपने बच्चों में नेतृत्व की भावना पैदा करनी होगी। उन्हें केवल डिग्रियों के पीछे नहीं, बल्कि समाज के लिए सोचने, बोलने और करने की समझ देनी होगी। हमें उन्हें केवल नौकरी की चाह नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण की भूमिका सिखानी होगी। यही नई राह होगी—जो संघर्ष से निकलेगी, मगर सिर्फ़ तक़लीफ़ नहीं, तरक़्क़ी का वादा भी करेगी।

आज जो बदलाव हम दूसरों से मांग रहे हैं, वह पहले ख़ुद के भीतर लाना होगा। यही सबसे बड़ा संघर्ष है। यह समय है हमें अपने भीतर की आलसी सोच से, टूटे हुए आत्म-विश्वास और विभाजित मानसिकता से जूझने का। यह समझना होगा कि सियासत और समाज को कोसना आसान है, मगर उसमें ईमानदारी से हिस्सा लेना ही अस्ली क्रांति है।

इस संघर्ष की शुरुआत बड़े मंचों से नहीं, छोटे निर्णयों से होती है—जब आप तय करते हैं कि आपका बच्चा आज से बेहतर किताब पढ़ेगा; जब आप तय करते हैं कि आपकी दुकान एक मॉडल बनेगी; जब आप तय करते हैं कि आपकी गली में हर बच्चा स्कूल जाएगा; जब आप तय करते हैं कि आप अपने वार्ड या नगर के सबसे ईमानदार इंसान को खड़ा करेंगे, और उसके लिए प्रचार करेंगे।

आज जब भारत के भीतर एक पूरी आबादी अपने हक़, पहचान और अस्तित्व के संकट से जूझ रही है—तो सवाल यह नहीं है कि सत्ता क्या कर रही है; असल सवाल यह है कि समाज खुद अपने लिए क्या कर रहा है? यह जान लीजिए कि इतिहास हमेशा सवाल पूछता है—कि जब समय ने पुकारा, तब तुमने क्या किया? आज वही समय है। याद रखें कि तक़दीरें तब बदलती हैं जब इरादे बदलते हैं, और इरादे तब बदलते हैं जब इंसान खुद को मज़लूम नहीं, मुजाहिद समझने लगे।

आख़िर में, यह जान लीजिए कि इतिहास हमेशा सवाल पूछता है—कि जब समय ने पुकारा, तब तुमने क्या किया? आज वही समय है। याद रखें कि तक़दीरें तब बदलती हैं जब इरादे बदलते हैं, और इरादे तब बदलते हैं जब इंसान ख़ुद को मज़लूम नहीं, मुजाहिद समझने लगे। ■■



ज़िन्दगी कोई बेमतलब सफ़र नहीं

प्रकाश स्तंभ

अहमद शब्बीर अली

हम इंसानों की सबसे बड़ी हद यही है कि हम मौत के पार देख ही नहीं सकते। हमारे पास ऐसी आंखें नहीं हैं जो उस पर्दे के पार झांक सकें। हमारे कान उस दुनिया की कोई आवाज़ नहीं पकड़ सकते। और आज की सबसे उन्नत लैब्स और तकनीक भी ये नहीं बता सकतीं कि मौत के उस पार कुछ है या नहीं।

अस्ल में, यह सवाल ही विज्ञान की पहुंच से बाहर है। न कोई प्रमाण है कि मौत के बाद कुछ है, न कोई सबूत कि कुछ नहीं है। जो लोग कहते हैं कि "साइंस प्रूव कर चुका है कि मौत के बाद कुछ नहीं होता", वे ख़ुद साइंटिफिक नहीं हैं। क्योंकि विज्ञान वहां चुप है।

मौत के बाद की ज़िंदगी को लेकर न "हां" का कोई ठोस आधार है, न "ना" का। इसका मतलब यह है कि इस मुद्दे पर सिर्फ़ विज्ञान से नहीं, बल्कि इंसान की सोच, उसके अनुभव और उसकी गहराई से जुड़ी दृष्टि से बात करनी होगी।

यह बात सिर्फ़ दार्शनिक बहस नहीं है। यह सीधा असर डालती है हमारी सोच पर, हमारे रोज़मर्रा के फ़ैसलों पर। सोचिए — अगर मरने के बाद कुछ नहीं है, तो फिर ईमानदारी, अच्छाई और दूसरों के लिए त्याग का क्या मतलब रह जाता है? फिर तो ज़िंदगी का अस्ली मक़सद सिर्फ़ ख़ुद को ख़ुश रखना हो जाता है। लेकिन अगर मरने के बाद कुछ है—कोई और ज़िंदगी, कोई हिसाब, कोई अगली मंज़िल—तो फिर ज़िंदगी की तर्ज़ ही बदल जाती है।

असल में, यह सवाल ही विज्ञान की पहुंच से बाहर है। न कोई प्रमाण है कि मौत के बाद कुछ है, न कोई सबूत कि कुछ नहीं है। जो लोग कहते हैं कि "साइंस प्रूव कर चुका है कि मौत के बाद कुछ नहीं होता", वे खुद साइंटिफिक नहीं हैं। क्योंकि विज्ञान वहां चुप है।

इसलिए यह सवाल जितना रहस्यमय है, उतना ही अहम भी है। और इस पर सोचने की ज़रूरत इसलिए नहीं कि कोई जवाब पक्का मिल जाएगा, बल्कि इसलिए कि यह सवाल हमें हमारी ज़िंदगी की गहराई में झांकने को मजबूर करता है।

हममें से हर इंसान भीतर से ये महसूस करता है कि वह सिर्फ़ एक जिस्म नहीं है। कोई ऐसा तत्व है हमारे अंदर, जो देखता है, सोचता है, महसूस करता है—जिसे हम 'मैं' कहते हैं। यह 'मैं' कौन है?

अगर आप अपने शरीर को देखें—ये हाथ, ये आंखें, ये दिमाग़—तो सवाल उठता है : क्या सोचने वाला सिर्फ़ ये शरीर है, या कुछ और भी है?

विज्ञान का जवाब सीधा है : सिर्फ़ दिमाग़ है। चेतना (Consciousness) महज़ दिमाग़ की एक जैव-रासायनिक



प्रक्रिया है। जैसे बिजली से पंखा चलता है, वैसे ही न्यूरॉन्स से सोच होती है। लेकिन...क्या वाक़ई ऐसा है?

अगर सोच सिर्फ़ दिमाग़ है, तो फिर हम कौन हैं? जब कोई मरता है, तो उसका दिमाग़ भी वहीं होता है, उसका शरीर भी, लेकिन फिर वो "शख़्स" कहां चला जाता है? दुनिया के तमाम अनुभवों, धर्मों, और यहां तक कि आज के कुछ वैज्ञानिक प्रयोगों तक से यह सवाल उठता है कि शायद इंसान के अंदर कोई 'आत्मिक चेतना' है। यानी, एक ऐसी सत्ता जो शरीर से अलग है, लेकिन उसी के ज़रिए ख़ुद को ज़ाहिर करती है, यानी आत्मा।

अब बात आती है कि अगर आत्मा है, तो वह कब से है, कहां से आई है, और कहां जाती है? क्या वह मौत के बाद ख़त्म हो जाती है? या फिर किसी और स्तर पर अपनी यात्रा जारी रखती है? क़ुरआन में एक जगह इंसान की रचना के संदर्भ में आता है–

"फिर उसने उसमें अपनी रूह फूंकी...।" (सूरा सजदा 32:9)

यह एक ऐसा दावा है जो कहता है कि इंसान के वजूद में कुछ ऐसा है जो पराभौतिक है, और जो मौत के साथ समाप्त नहीं होता। यहां आत्मा का मतलब कोई परीकथा नहीं, बल्कि एक गहरी हक़ीक़त है—वह सचेत अस्तित्व, जो हमें नैतिकता, अपराधबोध, अच्छाई-बुराई की समझ देता है। और शायद इसी आत्मा का सवाल हमें उस अगली ज़िंदगी से जोड़ता है—जो इस जीवन की सीमाओं के पार है।

अगर ये मान भी लें कि आत्मा है—और वह मौत के बाद भी ज़िंदा रहती है—तो अगला सवाल सीधा है—आगे क्या होता है? क्या हम किसी दूसरी दुनिया में चले जाते हैं? या फिर सब कुछ एक धुंध में खो जाता है? और अगर कोई ज़िंदगी है, तो उसकी शक्ल कैसी

"फिर उसने उसमें अपनी रूह फूंकी..." (सूरा सजदा 32:9) यह एक ऐसा दावा है जो कहता है कि इंसान के वजूद में कुछ ऐसा है जो पराभौतिक है, और जो मौत के साथ समाप्त नहीं होता। यहां आत्मा का मतलब कोई परीकथा नहीं, बल्कि एक गहरी हक़ीक़त है—वह सचेत अस्तित्व, जो हमें नैतिकता, अपराधबोध, अच्छाई-बुराई की समझ देता है। और शायद इसी आत्मा का सवाल हमें उस अगली ज़िंदगी से जोड़ता है—जो इस जीवन की सीमाओं के पार है।

होगी? क्या वह वैसी ही होगी जैसी यह ज़िंदगी है—सुख-दुख, दिन-रात, रिश्ते-नाते? या कुछ और?

हमारी तर्क-बुद्धि कहती है कि अगर कोई दूसरी ज़िंदगी है, तो वह ऐसी नहीं हो सकती जैसी ये है। ये दुनिया अधूरी है। यहां इंसाफ़ अधूरा है, मुहब्बतें अधूरी हैं, सपने अधूरे रह जाते हैं। और सबसे बड़ा अधूरापन—मौत। जिसने सब कुछ बीच में ही तोड़ दिया।

तो क्या वो ज़िंदगी—अगर है, एक ऐसी दुनिया होगी जहां कोई अधूरापन नहीं होगा? जहां इंसाफ़ मुकम्मल होगा, और इंसान को उसकी नियत और कर्मों का पूरा फल मिलेगा?

क़ुरआन इस ज़िंदगी की तस्दीक़ करता है—न सिर्फ़ बतौर उम्मीद, बल्कि बतौर हक़ीक़त–

"क्या इंसान यह समझता है कि वह यूं ही छोड़ दिया जाएगा?"

(सूरा क़ियामा, 75:36)

यह सवाल झकझोरता है—क्या सच में? क्या हम बस एक जैविक दुर्घटना हैं? क्या हमारे अच्छे-बुरे कर्मों का कोई मतलब नहीं? अगर दुनिया में सब कुछ मक़सद के साथ बना है—तो इंसान, जो इस कायनात का सबसे जटिल प्राणी है—क्या वह बेमक़सद हो सकता है? अगर हर कारण का एक परिणाम होता है, तो क्या इंसान की चेतना, उसका नैतिक विवेक, उसकी आत्मा—सिर्फ़ एक दुर्घटना है? या फिर यह सब एक बड़ी योजना का हिस्सा है?

मौत, उस योजना का दरवाज़ा हो सकती है—एक ऐसे वजूद की ओर, जहां सब कुछ साफ़ होगा। जहां हर अन्याय का हिसाब होगा, हर सच्चाई का इनाम। जहां हर वो सवाल, जिसे हम यहां नज़रअंदाज़ करते आए हैं—अपने पूरे वज़न के साथ सामने खड़ा होगा।

अंत में सवाल उठता है, तो फिर ज़िंदगी कैसे जी जाए? अगर यह मान लिया जाए कि मौत एक दरवाज़ा



है—और उस दरवाज़े के उस पार भी एक ज़िंदगी है, तो सबसे बड़ा सवाल ये उठता है, फिर इस ज़िंदगी का क्या मतलब है? क्या यह सिर्फ़ इंतिज़ार है उस अगली दुनिया का? या तैयारी है? या फिर बस एक इम्तिहान? अगर अगली ज़िंदगी में इंसाफ़ मुकम्मल होना है, तो यह ज़िंदगी एक ज़िम्मेदारी है। हम जो सोचते हैं, जो कहते हैं, जो करते हैं—उन सबका कोई मतलब है। हर छोटा-सा फ़ैसला, हर नीयत, हर मोड़—सब कुछ किसी बड़ी तस्वीर का हिस्सा है और यही बात डरावनी भी है, और दिलासा देने वाली भी।

डरावनी इसलिए कि हम जो ग़लत करते हैं, वह किसी अंधेरे में खो नहीं जाता। और दिलासा देने वाली इसलिए कि हम जो सही करते हैं, वह कभी ज़ाया नहीं होता।

जब इंसान को यह यक़ीन हो जाए कि हर बात का हिसाब है—तो उसका जीने का तरीक़ा बदल जाता है। वह अकेले में भी झूठ बोलने से डरता है। भीड़ में भी इंसाफ़ का साथ देता है। क्योंकि उसे पता होता है कि यह दुनिया आख़िरी नहीं है। क़ुरआन इसी बात को इस तरह कहता है–

"जिसने एक ज़र्रा भर भी भलाई की होगी, वह उसे देखेगा। और जिसने एक ज़र्रा भर भी बुराई की होगी, वह भी उसे देखेगा।" (सूरा ज़िलज़ाल, 99:7-8)

इसलिए ज़िंदगी कोई बेमतलब सफ़र नहीं है। यह एक मायने वाली दौड़ है—जिसकी मंज़िल किसी मर्ज़ी से नहीं, बल्कि हक़ से तय होगी। हर इंसान से उसकी औक़ात के मुताबिक़ सवाल किया जाएगा, लेकिन हर जवाब में एक बात पूछी जाएगी—"क्या तूने हक़ को पहचाना, और उस पर चला?" तो ज़िंदगी जीने का तरीक़ा यही है कि सच को पहचानो और उस पर डट जाओ। भले पूरी दुनिया ख़िलाफ़ हो, लेकिन अगर तुम हक़ पर हो, तो तुम अकेले नहीं हो। ■■



सुस्ती का रोग

सेहत

संपादन प्रभाग

जब किसी व्यक्ति को सुस्त या निष्क्रिय देखा जाता है, तो पहला अंदेशा यही होता है कि या तो वह बीमार है, या फिर वह आलसी हो गया है। मगर आज के दौर में यह एक सतही समझ है। सुस्ती, निष्क्रियता या 'लो एनर्जी' जैसी स्थितियां अब केवल व्यक्तिगत स्वभाव या बीमारी का लक्षण नहीं, बल्कि एक सामाजिक और वैश्विक संकट का सूचक बनती जा रही हैं। यह केवल शरीर की नहीं, समाज की भी बीमारी है, जो धीरे-धीरे उसकी चेतना को कुंद कर रही है।

एक व्यापक संकट का संकेत

'द लांसेट ग्लोबल हेल्थ' जर्नल में प्रकाशित सन् 2022 के अध्ययन में यह तथ्य सामने आया कि भारत में 57% महिलाएं और 42% पुरुष शारीरिक रूप से पर्याप्त सक्रिय नहीं हैं। इस अध्ययन ने 2030 तक इस आंकड़े के 60% से ऊपर जाने की आशंका जताई है। इसका अर्थ है कि भारत की कामकाजी, उत्पादक और विचारशील आबादी का बड़ा हिस्सा एक निष्क्रिय जीवनशैली की ओर अग्रसर है। यह न केवल स्वास्थ्य का मामला है, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संरचना का भी।

सोचिए, एक ऐसा देश जहां हर दूसरा व्यक्ति शरीर से शिथिल हो, वहां निर्णय की गति क्या होगी? वहां नेतृत्व की स्फूर्ति, सामाजिक सहभागिता और जनचेतना की तीव्रता क्या रूप लेगी?

निष्क्रियता के कारण : तकनीक या सामाजिक परिवर्तन?

आधुनिकता के साथ आई तकनीकी तरक़्क़ी ने जीवन को जितना सुविधाजनक बनाया, उतना ही निष्क्रिय भी। स्मार्टफ़ोन, लैपटॉप, ऑनलाइन सेवाएं और घर बैठे कमाने की संस्कृति ने लोगों को उनकी जगहों से चिपका दिया है। महामारी के दौरान "वर्क फ्रॉम होम" संस्कृति ने इस प्रवृत्ति को स्थायी बना दिया।

आज कई लोग दिन के 8–10 घंटे कंप्यूटर स्क्रीन के सामने बिताते हैं, और यह काम नहीं, कई बार सोशल मीडिया, वीडियो स्ट्रीमिंग और गेमिंग पर आधारित होता है। TikTok, Instagram Reels, और YouTube Shorts जैसी चीज़ें हमारे न्यूरोलॉजिकल सिस्टम को इस तरह बांधती हैं कि व्यक्ति की ऊर्जा केवल अंगूठे तक सीमित रह जाती है।

क्या यह सब केवल तकनीक का दोष है?

नहीं। यह सामाजिक संरचनाओं की बदलती प्राथमिकताओं और जीवनशैली में आई असंतुलन की देन भी है। आज परिवारों में खेलकूद, सामूहिक गतिविधियों, पार्क में टहलने या मोहल्ले की बैठकों जैसी चीज़ें लगभग समाप्त हो चुकी हैं। बचपन से ही बच्चों को ट्यूशन, कोचिंग और स्क्रीन पर आधारित शैक्षणिक सामग्री की ओर धकेला जाता है। नतीजा : बचपन से ही शरीर की सक्रियता हाशिये पर।

व्यस्तता बनाम सक्रियता : एक ख़तरनाक भ्रम

समस्या की जड़ यह भी है कि लोग स्वयं को व्यस्त मानते हैं, मगर वास्तव में सक्रिय नहीं होते। आप देखेंगे कि बहुत से लोग यह कहते हुए मिलेंगे कि "समय नहीं मिलता", मगर यही लोग दिन में 5–6 घंटे मोबाइल स्क्रीन पर बिताते हैं। वे व्यस्त हैं—लेकिन

आभासी दुनिया में।

यह 'वर्चुअल व्यस्तता' मानसिक ऊर्जा को तो खींचती है, लेकिन शरीर को और विचार को निष्क्रिय बना देती है। समय पर खड़े न हो पाना, सही समय पर भोजन न करना, नींद का नियमित न होना और दिनभर की हरकतें स्क्रीन के इशारों पर होना—ये सभी लक्षण बताते हैं कि समाज किस दिशा में जा रहा है।

निष्क्रियता और विचार का संबंध

यह भ्रम पाल लेना कि केवल शरीर का सक्रिय न होना स्वास्थ्य को नुक़सान पहुंचाता है, अधूरी बात है। शारीरिक निष्क्रियता विचारशक्ति को भी क्षीण कर देती है। आज जो सामाजिक उदासीनता, राजनीतिक निरपेक्षता और तर्कहीन विमर्श देखने को मिलता है, वह केवल संज्ञानात्मक नहीं, शारीरिक शिथिलता का भी परिणाम है।

'चलने वाले समाज' में विचार भी चलते हैं, प्रतिक्रिया भी समय पर आती है। वहीं 'बैठे हुए समाज' में प्रतिक्रिया देर से आती है या आती ही नहीं।

निष्क्रियता का राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव

यह मान लेना कि शारीरिक निष्क्रियता केवल स्वास्थ्य का मुद्दा है, एक बड़ी भूल होगी। भारत जैसा देश, जहां जनसंख्या ही सबसे बड़ी शक्ति मानी जाती है, वहां यह निष्क्रियता भविष्य में आर्थिक उत्पादन, सामाजिक भागीदारी और राजनीतिक सजगता को प्रभावित करेगी।

कल्पना कीजिए कि 2030 तक यदि देश की 60% से अधिक आबादी शारीरिक रूप से निष्क्रिय हो गई, तो मज़दूर वर्ग, किसान, निर्माण कार्य, सेवाक्षेत्र और यहां तक कि सशस्त्र बलों में सक्रियता कैसे क़ायम रह पाएगी? इसके अलावा सामाजिक आंदोलनों, नागरिक अधिकारों की रक्षा और राजनीतिक परिवर्तन जैसे कार्यों में जनसहभागिता कैसे संभव होगी?

रोगों का खुला आमंत्रण

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, शारीरिक निष्क्रियता दुनिया भर में मृत्यु के प्रमुख कारणों में चौथे स्थान पर है। मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा, हृदय रोग और यहां तक कि कैंसर जैसी बीमारियां सीधे तौर पर निष्क्रिय जीवनशैली से जुड़ी हुई हैं।

भारत में पहले जहां ये बीमारियां शहरी, उच्चवर्गीय जीवनशैली से जुड़ी मानी जाती थीं, अब ये ग्रामीण और निम्नवर्गीय समाज में भी प्रवेश कर चुकी हैं—क्योंकि वहां भी मोबाइल, टीवी और तकनीकी संसाधनों की पहुंच हो चुकी है, लेकिन संतुलन की समझ नहीं।

एक युवा देश होते हुए भी अगर भारत निष्क्रियता की ओर जा रहा है, तो यह महज़ शरीर की थकावट नहीं, बल्कि एक सामाजिक और वैचारिक थकान है। यह थकावट उसी समय दूर हो सकती है, जब हम पुनः चलने की संस्कृति अपनाएं, शरीर को विचार की पहली सीढ़ी मानें, और सक्रियता को केवल व्यायाम का पर्याय नहीं, बल्कि जीवन के मूल मूल्य के रूप में देखें।

क्या है समाधान?

1. शारीरिक शिक्षा

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शारीरिक शिक्षा को केवल खेल-कूद तक सीमित न रखकर, उसे जीवनशैली का हिस्सा बनाया जाए। बच्चों को केवल पाठ्यक्रम पास कराने की होड़ से निकालकर शरीर की उपयोगिता और महत्त्व सिखाया जाए।

2. ऑफ़िस संस्कृति में परिवर्तन

कार्यालयों में "स्टैंडिंग ब्रेक्स", "वर्कआउट मिनट्स", और "वॉकिंग मीटिंग्स" जैसी प्रणालियां अपनाई जाएं। काम के बीच में शरीर को सक्रिय रखने के लिए नीतिगत पहल ज़रूरी है।

3. तकनीक का ज़िम्मेदार उपयोग

तकनीक का विरोध नहीं, पर संतुलन ज़रूरी है। डिजिटल डिटॉक्स, स्क्रीन टाइम की सीमा और रचनात्मक तकनीकी उपयोग की आदतें बनाई जाएं।

4. सामूहिक गतिविधियों का पुनर्जीवन

पार्कों, सामुदायिक केंद्रों, मंदिरों-मस्जिदों के प्रांगण और स्थानीय सभाओं में सामूहिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाए।

5. नीतिगत दख़ल

सरकारों को सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों में शारीरिक सक्रियता को एक प्राथमिकता बनाना होगा। फ़िट इंडिया मूवमेंट जैसी पहलों को ज़मीनी स्तर तक पहुंचाना होगा।

एक युवा देश होते हुए भी अगर भारत निष्क्रियता की ओर जा रहा है, तो यह महज़ शरीर की थकावट नहीं, बल्कि एक सामाजिक और वैचारिक थकान है। यह थकावट उसी समय दूर हो सकती है, जब हम पुनः चलने की संस्कृति अपनाएं, शरीर को विचार की पहली सीढ़ी मानें, और सक्रियता को केवल व्यायाम का पर्याय नहीं, बल्कि जीवन के मूल मूल्य के रूप में देखें। क्योंकि एक निष्क्रिय शरीर केवल स्वयं बीमार नहीं होता, बल्कि वह समाज को भी बीमार करता है। ■■



फ़ार्मा क्षेत्र में करियर के बढ़ते अवसर

21 वीं सदी के दूसरे दशक में जब दुनिया ने कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी का सामना किया, तो एक क्षेत्र जो सबसे आगे खड़ा रहा, वह था "फ़ार्मास्युटिकल सेक्टर"। यह न केवल जीवन रक्षा का एक प्रमुख आधार साबित हुआ, बल्कि युवाओं के लिए करियर की नई संभावनाओं का द्वार भी बना। चिकित्सा, औषधि अनुसंधान, जैव प्रौद्योगिकी, क्लिनिकल ट्रायल, फ़ार्मेसी प्रैक्टिस, हेल्थकेयर मैनेजमेंट, औषधि विपणन और गुणवत्ता नियंत्रण जैसे क्षेत्रों में अब व्यापक अवसर उपलब्ध हैं।

भारत, जिसे 'विश्व की फ़ार्मेसी' कहा जाता है, वैश्विक दवाओं की आपूर्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है। इसका प्रत्यक्ष असर रोज़गार के अवसरों पर भी पड़ा है। यह लेख फ़ार्मा क्षेत्र में उपलब्ध विभिन्न करियर विकल्पों, उनकी योग्यता, संभावनाओं और विस्तार पर केंद्रित है।

भारत का फ़ार्मा उद्योग : एक अवलोकन

भारतीय फ़ार्मा उद्योग वर्तमान में विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उद्योग (वॉल्यूम के लिहाज़ से) है और वैश्विक दवा निर्यात में इसका 20% से अधिक योगदान है। भारत की लगभग 60% आबादी अभी



भी प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं से जूझ रही है, जिससे घरेलू बाज़ार में भी विशाल संभावनाएं मौजूद हैं।

भारत में फ़ार्मास्युटिकल उद्योग तीन मुख्य भागों में विभाजित है–

1. **मैन्युफैक्चरिंग यूनिट्स:** Active Pharmaceutical Ingredients (API), फॉर्मुलेशन और जेनेरिक दवाओं का निर्माण
2. **अनुसंधान और विकास (R&D)** : नई दवाओं, वैक्सीन और बायोफ़ार्मास्युटिकल उत्पादों पर शोध
3. **मार्केटिंग और डिस्ट्रीब्यूशन:** दवाओं की बिक्री, प्रचार और आपूर्ति श्रृंखला।

फ़ार्मा क्षेत्र में प्रमुख करियर विकल्प

1. फार्मासिस्ट (Pharmacist)

• **कार्य :** अस्पतालों, क्लीनिकों और दवा दुकानों में दवाओं का वितरण, रोगियों को परामर्श देना।

• **योग्यता :** D. Pharm (डिप्लोमा इन फ़ार्मेसी) या B. Pharm (बैचलर ऑफ़ फ़ार्मेसी)

• **रोज़गार क्षेत्र :** सरकारी व निजी अस्पताल, मेडिकल स्टोर, क्लीनिक, डिफेंस सर्विसेस आदि

2. क्लिनिकल रिसर्च प्रोफेशनल

• **कार्य :** नई दवाओं का परीक्षण,

उनके प्रभाव का मूल्यांकन, मानव परीक्षण में भागीदारी

• **योग्यता :** B. Pharm, M. Pharm, M.Sc (Life Sciences), MBBS, या Clinical Research में स्पेशलाइज़ेशन

• **संभावनाएं :** CROs (Clinical Research Organizations), फार्मा कंपनियां, WHO, ICMR

3. ड्रग इंस्पेक्टर

• **कार्य :** दवा निर्माण इकाइयों की जांच, गुणवत्ता मानकों की पुष्टि

• **योग्यता :** B. Pharm+ सरकारी परीक्षा (UPSC/PSC स्तर की)

• **प्रभाव :** एक प्रतिष्ठित सरकारी पद जिसमें समाज में दवा की गुणवत्ता बनाए रखने की ज़िम्मेदारी होती है।

4. मेडिकल साइंटिस्ट / R&D एक्सपर्ट

• **कार्य :** दवाओं का आविष्कार, प्रभावी यौगिकों का अध्ययन

• **योग्यता :** M. Pharm, PhD (Pharmacology, Medicinal Chemistry)

• रिसर्च इंस्टीट्यूट्स: CSIR, DRDO, ICMR, भारत बायोटेक, सेरम इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडिया

5. मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव (MR)

• **कार्य :** डॉक्टरों को दवा के बारे में जानकारी देना, बिक्री बढ़ाना

• **योग्यता :** B. Pharm, B.Sc (Biology/Chemistry)

• **प्रमुख कौशल :** संप्रेषण क्षमता, नेटवर्किंग, सेल्स का ज्ञान।

6. रेगुलेटरी अफेयर्स स्पेशलिस्ट

• **कार्य :** दवाओं की मंज़ूरी के लिए विभिन्न देशों के नियामक मानकों के अनुसार दस्तावेज़ तैयार करना।

• **योग्यता :** B. Pharm, M. Pharm, स्पेशलाइज़ेशन इन रेगुलेटरी अफेयर्स

• **संभावनाएं :** ग्लोबल फ़ार्मा कंपनियां जैसे Pfizer, Novartis, Dr. Reddy's

7. फ़ार्माकोविजिलेंस एनालिस्ट

• **कार्य :** दवाओं के साइड इफेक्ट्स और उनकी सुरक्षा की निगरानी

• **योग्यता :** Life Sciences/ Pharmacy में स्नातक/स्नातकोत्तर, Good Clinical Practice (GCP) में ट्रेनिंग

• **महत्व :** यह दवा की प्रभावशीलता और सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

उद्यमिता के अवसर

फ़ार्मा क्षेत्र केवल नौकरी तक सीमित नहीं है। यदि आपके पास पूंजी और विज़न है, तो आप निम्न उद्यमिता विकल्प चुन सकते हैं :

• मेडिकल स्टोर/फार्मेसी खोलना

• दवा निर्माण यूनिट स्थापित करना



• डिस्ट्रीब्यूशन या फ्रेंचाइज़िंग बिजनेस शुरू करना

• हर्बल/आयुर्वेदिक दवाओं का व्यवसाय

• ऑनलाइन फ़ार्मेसी पोर्टल/एप बनाना (जैसे 1mg, Netmeds)

इन उद्यमिता प्रयासों को भारत सरकार के स्टार्टअप इंडिया, PMEGP जैसी योजनाओं के माध्यम से सहायता मिल सकती है।

वैश्विक अवसर

भारतीय फ़ार्मा प्रोफेशनल्स की मांग केवल भारत तक सीमित नहीं है।

• संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप,

कनाडा, ऑस्ट्रेलिया में B. Pharm या Pharm D धारकों के लिए बड़ी मांग है।

• WHO, UNICEF, UNDP जैसे वैश्विक संगठनों में फ़ार्मा विशेषज्ञों की आवश्यकता रहती है।

• USFDA, EMEA, TGA जैसे वैश्विक नियामक संस्थानों में करियर की संभावनाएं भी उभर रही हैं।

कौशल विकास और अपस्किलिंग की आवश्यकता

फ़ार्मा क्षेत्र में सफलता के लिए केवल डिग्री पर्याप्त नहीं है। यह एक सतत विकसित होने वाला क्षेत्र है, जहां नई दवाओं, टेक्नोलॉजी और नियमों की जानकारी ज़रूरी होती है।

आवश्यक कौशल :

• डेटा एनालिसिस और बॉयोस्टैटिसटिक्स

• GCP और GLP की समझ

• लैब तकनीक का व्यावहारिक अनुभव

• AI और मशीन लर्निंग आधारित ड्रग डिस्कवरी का ज्ञान

• सॉफ्ट स्किल्स : संप्रेषण, लीडरशिप, टीमवर्क

सरकार की भूमिका और प्रोत्साहन

भारत सरकार ने "Pharma Vision 2020" और "Production Linked Incentive (PLI)" जैसी योजनाओं के ज़रिए फ़ार्मा उद्योग को गति दी है। इसके अलावा, आयुष्मान भारत और स्वास्थ्य क्षेत्र पर बढ़ता बजट भी फ़ार्मा क्षेत्र के विस्तार में सहायक है।

राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (NSDC) के माध्यम से "Life Sciences Sector Skill Development Council (LSSSDC)" द्वारा कई कौशल कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जिनसे युवाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण मिलता है।

फ़ार्मा क्षेत्र न केवल जीवन रक्षक है, बल्कि रोज़गार और नवाचार का एक सशक्त माध्यम भी है। यह क्षेत्र विज्ञान और सेवा के समन्वय का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। यदि युवा उचित योग्यता, कौशल और दृष्टिकोण के साथ इस क्षेत्र में क़दम रखें, तो न केवल वे व्यक्तिगत रूप से सफल होंगे, बल्कि भारत को स्वास्थ्य और विज्ञान के वैश्विक मानचित्र पर शीर्ष पर ले जाने में भी योगदान देंगे।

वर्तमान में जब भारत आत्मनिर्भर बनने की राह पर अग्रसर है, फ़ार्मा क्षेत्र उसमें एक मज़बूत स्तंभ साबित हो सकता है—बशर्ते कि युवा पीढ़ी इसे करियर की गंभीर संभावना के रूप में स्वीकार करे। ■■





Whatsapp (9818799223) your complete address with screenshot of payment

कहानी



विनोद महर्षि
'अप्रिय'

हमारी सोच

हमारी सोच, बीता हुआ समय हमें बहुत कुछ सिखा जाता है। कुछ ऐसे होते हैं, जो चाहकर भी भुलाए नहीं जा सकते। ज़िन्दगी की इस भागम-भाग में कई ऐसे नज़ारे देखने को मिल जाते हैं, जिनसे एक माक़ूल सीख मिलती है, लेकिन मनुष्य का एक भाव नज़रअंदाज़ करना भी है। शायद आज हम सभी एक ऐसी दुनिया में खो से गए हैं जहां हम चाहकर भी कुछ सीख नहीं पाते हैं और अच्छी बातों को नज़रअंदाज़ करते जाते हैं। इस बदले हुए स्वभाव को मैं नया नाम देता हूं, 'वर्तमान की सोच'।

इस सोच से जुड़े कुछ दृश्य मैं बयां कर रहा हूं, जो मैंने ख़ुद महसूस किए हैं। मैं बताना चाहता हूं कि मनुष्य कहां ग़लती करता है और कहां हमारी सोच कुंठित हो जाती है। जो वर्तमान में समाज के लिए ज़हर बन जाती है। अपने जीवन की गाड़ी चलाने के लिए हर किसी को कुछ न कुछ करना पड़ता है।

मैं भी एक दिन अपने काम से कहीं जा रहा था। बस में सवारियां बहुत थीं। धक्का-मुक्की में फंसा हुआ मैं सफ़र का अनोखा आनंद ले रहा था। एक गांव में कुछ सवारी बस से उतरी तो मैंने नज़र दौड़ाई एक सीट ख़ाली मिली। मैं फटाफट जाकर बैठ गया की कोई और न आ जाए। अगले गांव में कुछ सवारी फिर चढ़ी। एक अधेड़ उम्र की महिला भी। उसने पूरी बस में नज़र दौड़ाई, लेकिन कोई सीट ख़ाली नहीं थी। बस में एक सीट का सहारा लेकर बेचारी बूढ़ी महिला खड़ी हो गई। मुझे कुछ देर के लिए तो लगा की खड़ा होकर सीट दे दूं, किन्तु आधे घंटे के धकमपेल की वजह से मैं भी काफ़ी थक गया था। शरीर गवाही नहीं दे रहा था की खड़ा हो जाऊं। आसपास नज़र घुमाई तो सबसे युवा मैं ही था, तो सबकी नज़रें मेरे ऊपर ही थी न चाहते हुए भी खड़ा हुआ।

बस में सवारियां बहुत थीं। धक्का-मुक्की में फंसा हुआ मैं सफ़र का अनोखा आनंद ले रहा था। एक गांव में कुछ सवारी बस से उतरी तो मैंने नज़र दौड़ाई एक सीट ख़ाली मिली। मैं फटाफट जाकर बैठ गया की कोई और न आ जाए। अगले गांव में कुछ सवारी फिर चढ़ी। एक अधेड़ उम्र की महिला भी।

माता जी आप बैठ जाइये। न...न ...न...बेटा.....बैठे रहो कहते हुए मेरे पूरी तरह सीट छोड़ने से पहले ही सीट पर बैठ गई। मैंने सोचा की अगर बैठना ही था तो न...न...बोलने की क्या ज़रूरत थी?

ख़ैर बस अब शहर पहुंच चुकी थी। मेरे साथ-साथ बस की अन्य सवारियां भी एक-एक करके उतर गई। सब चले अपनी-अपनी मंज़िल की ओर।

मुझे और आगे दूसरे शहर जाना था, तो बस स्टैंड पर खड़ा हो गया और आगे वाली बस का इंतिज़ार करता रहा। संयोग से बस के आने में बहुत समय था। मैं बस स्टैंड पर चहल-क़दमी करता रहा और बाज़ार की रौनक़ देखता रहा। अचानक कानों में एक मंद मीठी मुरली की धुन सुनाई दी। अनायास ही क़दमों की रफ़्तार तेज़ हो गई, मानो मैं वो धुन सुनने के लिए ही आया हूं। इधर-उधर देखा तो कहीं कुछ दिखाई नहीं दिया पांच-सात मिनट इंतिज़ार करने के बाद अचानक नज़र सामने के बस स्टैंड के एक कोने में गई, तो देखा की एक आठ-दस साल का अबोध बालक एक गंदा-सा झोला गले में टांगे खड़ा था। मुरली की धुन अब बंद हो गई थी। मैंने उस बच्चे को ग़ौर से देखा तो पाया कि वह कुछ करना चाह रहा था। उसने झोले से एक पिटारा निकाला, जिसमें दो नक़ली सांप फ़न



फैलाये हुए थे। उसने पिटारा और झोला नीचे रखा और सांपों को ज़मीन पर रख दिया। थोड़ी देर ग़ौर से देखने पर समझ में आया की वो अपना खेल जमा रहा था। वह तमाशा दिखाना चाह रहा था, लेकिन उसके आस-पास कोई नहीं था। फिर मैंने देखा की उसके हाथ में मुरली थी। सोचा उसके पास जाऊं और पूछूं कि क्या अभी मुरली तुम्हीं बजा रहे थे? लेकिन न जा सका। यह सोचकर रुक गया कि वहां कोई नहीं था। अकेला वो अबोध बालक था। फिर सोचा यह तो कच्चा बच्चा है। यह क्या इतने सुर में मुरली बजा सकता है? ये सोचकर नज़रे वहां से हटा ली और बसों की आवाजाही देखता रहा। अचानक वही प्यारी धुन फिर से कानों में पड़ी। मैं फ़ुर्ती से घूमा तो देखा वही बच्चा मुरली बजा रहा था। आश्चर्य हुआ और ख़ुशी भी की इतनी छोटी उम्र में इतना मन भावन हुनर।

लेकिन मैं एक और अचरज में था, की इतनी छोटी उम्र में बच्चों को यह सब क्यों करना पड़ता है? शायद यही ज़िन्दगी है। जीविका के लिए कुछ तो करना ही पड़ता है। पर यह क्या भगवान उम्र का तो ख़्याल रखते? दूध पीते बच्चे इस दुनिया की तड़क-भड़क में बिना ज्ञान के क्या कर पायेंगे? लेकिन मन को तसल्ली ये भी थी, एक कहावत को सुना था कि 'कीचड़ में कमल खिलता है।'

यह हमारी वही सोच है जो कुंठित हो गई है, जिसके आगे हम किसी की धुन नहीं सुनना चाहते। बस अपने आप की सोचते हैं। सोच विचार की उठा पटक में मेरी बस आ गई। मैं झटपट बस में चढ़ा और कोने की सीट पकड़ कर बैठ गया, ताकि कोई और आकर न बैठ जाये।

आज देखा भी। कुछ देर वो बच्चा खेल दिखाने की पुरज़ोर कोशिश करता रहा, पर शायद किसी के पास इतना वक़्त नहीं था, की रुककर खेल देखे और ग़रीब की पेट भरने में मदद करे। कोई उस तरफ़ नहीं गया मुरली की वो धुन आकर्षक थी। बार-बार चाह रहा था कि जाऊं, लेकिन न जा सका ये सोचकर पैर रुक गये की देखने वाले क्या कहेंगे कि इसको कोई काम नहीं है।

पैर दुनिया के कहने और डर से रुक जाते हैं, पर दिल की सच्चाई को कोई ताक़त नहीं रोक सकती, लेकिन सच्चाई यह भी है कि हम तमाशा भीड़ में देख सकते हैं, अकेले में हमें उस ग़रीब और बेसहारा की मजबूरी नज़र आती है। जो भीड़ में कोई कभी चाह कर भी नहीं देखना चाहता है। एक बार मेरा भी मन हुआ कि उसके पास जाऊं पर क़दम आगे नहीं बढ़े। मन में कई सवाल, विचार उठे। पर जवाब किसी का भी नहीं था। मेरे पास भी नहीं, 'लेकिन फ़ुरसत में जब दोबारा उसको याद करता हूं तो हर सवाल का जवाब मिलता है और वो जवाब है 'हमारी सोच।'

यह हमारी वही सोच है जो कुंठित हो गई है, जिसके आगे हम किसी की धुन नहीं सुनना चाहते। बस अपने आपकी सोचते हैं। सोच-विचार की उठा-पटक में मेरी बस आ गई। मैं झटपट बस में चढ़ा और कोने की सीट पकड़ कर बैठ गया, ताकि कोई और आकर न बैठ जाये। ■■ (हिन्दीकुंज.कॉम)

परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सशक्त संतुलन के पक्षधर

शिक्षा जगत



अभय कुमार

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद एक बड़े विद्वान, विचारक, लेखक, पत्रकार, स्वतंत्रता सेनानी, हिंदू-मुस्लिम एकता के सफ़ीर और स्वतंत्र भारत के पहले शिक्षा मंत्री थे। उनका जन्मदिन 11 नवंबर को पूरे देश में राष्ट्रीय शिक्षा दिवस के रूप में मनाया जाता है। हालांकि, बहुत से लोग महसूस करते हैं कि शासक वर्ग और उनके नीति-निर्माता मौलाना आज़ाद को श्रद्धांजलि तो देते हैं, लेकिन उनके संदेश और मिशन को लागू करने में अक्सर विफल रहते हैं।



सच्चाई है कि पिछली धर्मनिरपेक्ष सरकारों ने भी मौलाना आज़ाद के विचारों पर पूरी तरह अमल नहीं किया, लेकिन वर्तमान हिंदुत्व की हुकूमतें उनके विचारों को पहले से भी अधिक नज़रअंदाज़ कर रही हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि भाजपा सरकारें शिक्षा का तेज़ी से निजीकरण कर रही हैं और शिक्षा बजट में लगातार कटौती कर रही हैं।

मौलाना आज़ाद ने शिक्षा को कभी भी बाज़ार में बेचे जाने वाली वस्तु नहीं माना। उनके अनुसार, शिक्षा समाज को बेहतर बनाने और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की नींव को मज़बूत करने का एक महत्वपूर्ण किरदार है। लेकिन आज के नीति-निर्माता तालीम को केवल तिजोरी भरने और सांप्रदायिक सोच को बढ़ावा देने का ज़रिया मानते हैं।

मिसाल के तौर पर देश में शिक्षा मंत्री के चुनाव को देख लीजिए। इससे सत्ता वर्ग की प्राथमिकताओं में आए बड़े बदलाव का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। एक समय था जब मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, हुमायूं कबीर और प्रोफ़ेसर एस. नूरुल हसन जैसे महान विद्वानों ने शिक्षा मंत्री के रूप में कार्य किया, जिन्होंने देश की विज़ारत-ए-तालीम को प्रतिष्ठा दिलाई।

लेकिन अब स्थिति इतनी बिगड़ चुकी है कि हाल के शिक्षा मंत्रियों की ख़ुद की शैक्षणिक योग्यता पर सवाल उठाए जा रहे हैं।

बीते कुछ वर्षों में शिक्षा मंत्रालय, धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के पालन के बजाय, तेज़ी से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के एजेंडे को लागू करने की दिशा में बढ़ रहा है।

पाठ्यक्रम में "राष्ट्रीय" [हिंदू] नायकों को शामिल करने और "राष्ट्रीयता" व "देशभक्ति" की भावना भरने के नाम पर अल्पसंख्यकों और वंचित वर्गों के इतिहास व योगदान की अनदेखी की जा रही है। इस चुनौतीपूर्ण समय में मौलाना आज़ाद का शैक्षिक-दर्शन पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गया है।

जनवरी 1947 में अंतरिम सरकार में शामिल होने से लेकर अपनी मृत्यु तक, मौलाना आज़ाद ने केंद्रीय मंत्री के रूप में देश में सार्वजनिक शिक्षा का दायित्व संभाला। जहां पंडित नेहरू के कार्यकाल में प्रमुख शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना का श्रेय उन्हें दिया जाता है, वहीं बुनियादी शिक्षा पर ध्यान न देने के लिए उनकी आलोचना भी होती है।

नेहरू के दौर में बहुजन वर्गों विशेषकर पिछड़ी जातियों की भागीदारी को बढ़ाने के लिए भी कोई अहम प्रयास नहीं हुआ।

शिक्षा मंत्री के रूप में मौलाना आज़ाद की सफलताएं और चुनौतियों पर निष्पक्ष चर्चा होनी चाहिए, लेकिन कोई भी निष्कर्ष देने से पहले यह समझना आवश्यक है कि मौलाना आज़ाद सवर्ण-लॉबी के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार के पहले से तयशुदा 'फ्रेमवर्क' से निकल पाने में असमर्थ थे।

इसके बावजूद, मौलाना आज़ाद

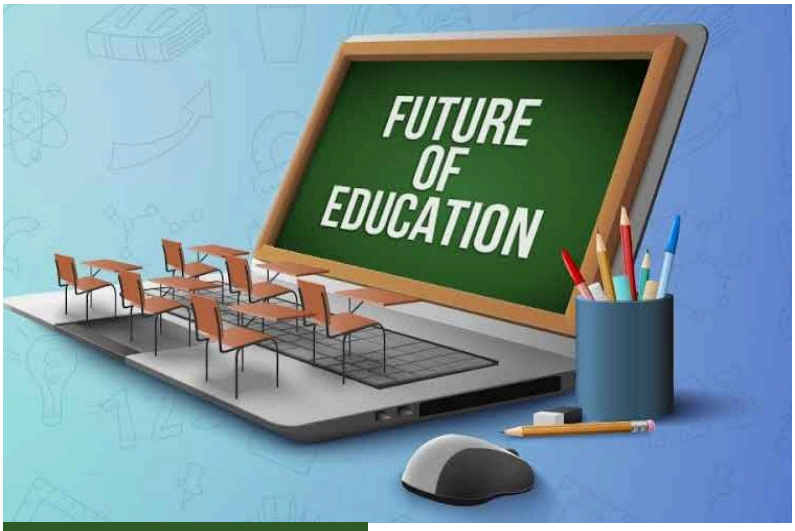

भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता और विद्यार्थियों की प्रतिभा सोने-चांदी से भी अधिक मूल्यवान है, और यदि उन्हें उचित अवसर दिए जाएं तो भारत ज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे जा सकता है। धार्मिक और राष्ट्रीय पहचान परस्पर विरोधी नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। शैक्षिक नीति का उद्देश्य राष्ट्र की साझी संस्कृति को सुदृढ़ करना होना चाहिए।

के व्यक्तिगत प्रयासों को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि मौलाना आज़ाद की सेवाएं, कांग्रेस काल के अन्य शिक्षा मंत्रियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

इसका प्रमुख कारण यह है कि मौलाना आज़ाद स्वयं राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े हुए नेता थे, जिन्होंने अंग्रेज़ी हुकूमत के कड़वे अनुभवों से झेलते हुए नए भारत के निर्माण का सपना देखा और उसे साकार करने की दिशा में कोशिश कर रहे थे।

मौलाना आज़ाद के शैक्षिक दर्शन पर काफ़ी सामग्री उपलब्ध है, लेकिन 18 फ़रवरी 1947 की उनकी प्रेस कॉन्फ्रेंस में कही गई बातें विशेष महत्व रखती हैं। इस प्रेस कॉन्फ्रेंस में मौलाना आज़ाद ने यह स्पष्ट किया कि किसी व्यक्ति के भीतर 'क्वालिटी' का निर्माण किस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है, उस पर निर्भर करता है, और शिक्षा का महत्व अन्य कारकों से कहीं अधिक है।

उनके अनुसार, एक उदार और मानवतावादी शिक्षा समाज की मानसिकता में बदलाव ला सकती है और उसे विकास व समृद्धि की दिशा में ले जा सकती है। हालांकि, उन्होंने चेतावनी दी

कि एक दोषपूर्ण या अवैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली उन सभी आशाओं को समाप्त कर सकती है जो स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देश के अगुवाओं ने संजोई थीं।

मौलाना आज़ाद अच्छी तरह जानते थे कि राष्ट्र-निर्माण में धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक सार्वजनिक शिक्षा का बहुत महत्व है। उनका मानना था कि नागरिकों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करना राज्य का दायित्व है। इसी कारण उन्होंने साफ़ कहा कि राष्ट्रीय बजट में शिक्षा को पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए और भोजन तथा वस्त्र के बाद इसका स्थान है।

समाजवादियों की लंबे समय से यह मांग रही है कि राष्ट्रीय बजट का दसवां हिस्सा शिक्षा पर ख़र्च किया जाए। यह विडंबना ही है कि भारत, जो दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, अपनी तुलना में छोटी इकॉनमी से भी कम सार्वजनिक शिक्षा पर ख़र्च करता है।



भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता और विद्यार्थियों की प्रतिभा सोने-चांदी से भी अधिक मूल्यवान है, और यदि उन्हें उचित अवसर दिए जाएं तो भारत ज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे जा सकता है। लेकिन दुर्भाग्यवश, आज के नेताओं में ऐसी सोच का अभाव है। वे केवल वोट पाने के लिए लोगों को धार्मिक आधार पर विभाजित करने में लगे हुए हैं।

मौलाना आज़ाद भारत की धर्मनिरपेक्ष और गंगा-जमुनी सभ्यता के एक महान प्रतीक थे। वे अंग्रेज़ी शिक्षा, विज्ञान और आधुनिक तकनीक के महत्व से पूरी तरह परिचित थे। साथ ही, वे इस विचार के समर्थक थे कि प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में दी जानी चाहिए।

इस संदर्भ में उन्होंने कहा कि 10वीं कक्षा तक मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने का अनुभव सफल रहा है, जिसे अब उच्च स्तर पर भी अपनाया जाना चाहिए। लेकिन आज शासक वर्ग राष्ट्रीय भाषाओं और बोलियों को हीन दृष्टि से देखता है।

मौलाना आज़ाद भली-भांति समझते थे कि शिक्षा क्षेत्र की उपेक्षा हो रही है, और इसी कारण वे इसमें सुधार करना चाहते थे। उनकी शैक्षिक सोच में परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सशक्त संतुलन है। उन्होंने परंपरा, संस्कृति, विरासत और आधुनिक धर्मनिरपेक्ष विचारों के बीच तालमेल बैठाने की वकालत की।

उनका मानना था कि भारतीयों को अपनी धार्मिक मान्यताओं का पालन करना चाहिए, लेकिन साथ ही उन्हें अन्य धर्मों के अनुयायियों की आस्था का भी सम्मान करना चाहिए, जिससे सामूहिक रूप से राष्ट्रीय एकता को मज़बूत किया जा सके। उनके अनुसार, धार्मिक और राष्ट्रीय पहचान परस्पर विरोधी नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए, उनका मानना था कि हिंदू और मुसलमानों दोनों को देवनागरी और उर्दू लिपियां सीखनी चाहिए। उनकी शैक्षिक नीति का उद्देश्य राष्ट्र की साझी संस्कृति को सुदृढ़ करना था।

मौलाना आज़ाद प्राकृतिक विज्ञान, कला, मानविकी, दर्शन और सामाजिक विज्ञान में बुनियादी अनुसंधान को हर तरह से बढ़ावा देना चाहते थे। आज के दौर में, जहां शोध का स्थान त्वरित लाभ कमाने की प्रवृत्ति ने ले लिया है, मौलाना आज़ाद का दृष्टिकोण एक प्रेरणा स्रोत है।

मौलाना आज़ाद ने इतिहास की गहन समझ के लिए एक राष्ट्रीय संग्रहालय की स्थापना पर ज़ोर दिया और पुरातात्विक अनुसंधान को प्रोत्साहित किया, ताकि इतिहासकार केवल 'टेक्स्ट' के आधार पर इतिहास न लिखें।

सार यही है कि हमें विभाजनकारी और सांप्रदायिक शिक्षा प्रणाली को विफल करने के लिए न केवल मौलाना आज़ाद को सच्चे दिल से याद करना होगा, बल्कि उनके बताए मार्ग पर भी चलना होगा। ■■

"डिजिटल ख़सरा संख्या 302/9"

लघुकथा



सुफ़ियान अहमद

गर्मी अपने चरम पर थी और तहसील कार्यालय के बाहर लगी लंबी लाइनें किसी पुराने क़िले की परछाईं जैसी लग रही थीं—धूप से झुलसी, धैर्य से थकी।

रामसर गांव की वृद्ध विधवा शांति देवी अपनी पोती के साथ 11 बजे से लाइन में खड़ी थी। मोबाइल में DI-GI-BHOOMI ऐप खुला था, जिसमें उसका पुश्तैनी खेत अब "गोपनीय स्वामित्व विवादित (302/9)" के रूप में दर्ज था।

"मेरा खेत कैसे विवादित हो गया, बिटिया?"–उसने पूछा।

"कहते हैं, वहां अब सरकारी गोदाम बनेगा। डिजिटल नक़्शा नया अपलोड हुआ है।" – पोती ने बताया।

दूसरी ओर, उसी ख़सरा संख्या पर दावा करने वाले फ़ैज़ मुहम्मद के बेटे अनीस ने कोर्ट में याचिका दी थी कि उनके दादा का नाम भी उसी ज़मीन पर था, जिसे 1948 में "छूट गई संपत्ति" मानकर अराजपत्रित कर दिया गया था। अब वह ज़मीन दो पीढ़ियों बाद "सरकारी भूमि" घोषित हो रही थी।

"अदालत तो कहती है कि दस्तावेज़ पुराना है, डिजिटल रिकॉर्ड नया है।" – अनीस ने कहा।

तहसील के बाहर एक चाय की दुकान पर एक रिटायर्ड पटवारी बैठा था–झुकी कमर, पकी हुई मूंछें, पर आंखों में अब भी नक़्शे की रेखाओं की पहचान।

शांति देवी और अनीस, दोनों उसके पास पहुंचे।

"बाबा, आपको याद है न खेत की मेड़ें? जहां आम का पेड़ था?"

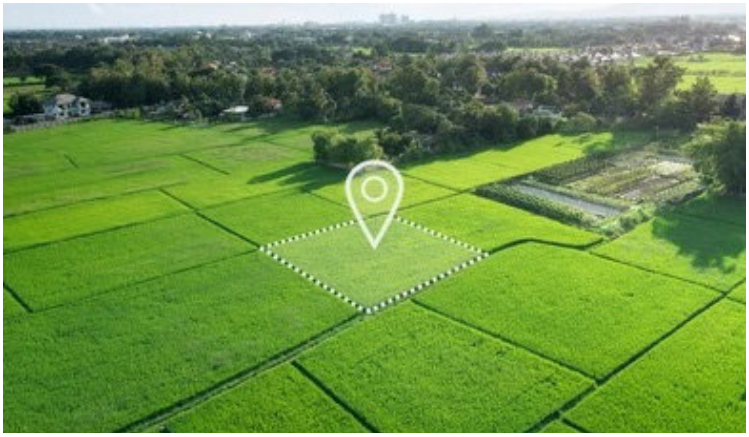

पटवारी ने एक गहरी सांस ली, जैसे ज़मीन की स्मृति उसकी पसलियों में उतर गई हो।

"हां बेटा, याद है। वहां एक कुआं भी था। शांति के पति ने उसे खुदवाया था। और अनीस के दादा ने उसमें चंदा दिया था। वो ज़मीन साझी थी…आदमी बंट गए, ज़मीन नहीं बँटी।"

नया डीएम, जो हाल ही में ज़िले में नियुक्त हुआ था, "डिजिटल इंडिया भूमि अभियान" का उद्घाटन कर रहा था। भाषण के दौरान उसने गर्व से कहा–

"अब भूमि पर कोई भ्रम नहीं रहेगा। हर इंच डिजिटल मैप में दर्ज है।"

तभी पीछे से एक आवाज़ आई–

"तो स्मृति का क्या होगा साहब? क्या स्मृति को भी Geo-tag किया जाएगा?"

लोग पलटे। बोलने वाला वही बूढ़ा पटवारी था।

हफ़्तों बाद शांति देवी का मोबाइल फिर बीप करने लगा–

"आपकी अपील ख़ारिज की जाती है। भूमि अब सरकारी प्रयोग हेतु अधिग्रहित मानी जाती है।"

उसी दिन अनीस को एक ईमेल मिला–

"आपकी याचिका की कोई वैधानिक वैधता नहीं है, क्योंकि पाकिस्तान निवासी पूर्वजों का दावा अब राष्ट्रीय सुरक्षा नीति के अंतर्गत अमान्य है।"

दोनों उस भूमि पर पहुंचे–अब वहां एक पीली टीन की चहारदीवारी खड़ी थी, जिस पर लिखा था–

"राष्ट्रीय भंडारण परियोजना–प्रवेश निषेध"

शांति देवी ने ज़मीन की धूल उठाकर माथे से लगाई। अनीस ने उसी ज़मीन से एक मुट्ठी मिट्टी उठाकर अपने रूमाल में बांध ली।

दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। कुछ नहीं कहा। ■■

आख़िरी पन्ना



सायेमा हुसैन

ज्ञान और मार्गदर्शन का अंतिम संदेश

क़ुरआन को आख़िरी किताब कहा जाता है, जो ख़ुदा की ओर से इंसानियत के लिए अंतिम और संपूर्ण मार्गदर्शन है। यह न केवल धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि मानव जीवन के हर पहलू को निर्देशित करने वाला एक समग्र दर्शन भी है। क़ुरआन के ज्ञान और हिदायत को समझने के लिए ज़रूरी है कि हम इसे केवल धार्मिक मान्यता के बजाय एक तर्कसंगत और ऐतिहासिक संदर्भ में देखें।

क़ुरआन का ऐतिहासिक सन्दर्भ और सामाजिक क्रांति

क़ुरआन का अवतरण उस समय हुआ जब अरब समाज अनेक सामाजिक बुराइयों, अनैतिक प्रथाओं और अज्ञानता के गर्त में डूबा था। उस युग में जातीय भेदभाव, महिलाओं का अपमान, ग़ुलामी, हिंसा और मूर्तिपूजा सामान्य थीं। क़ुरआन ने इस पारंपरिक और पाषाणकालीन सामाजिक ढांचे को चुनौती दी और इंसानियत की बुनियाद पर आधारित नया सामाजिक मॉडल प्रस्तुत किया।

तार्किक रूप से देखें तो क़ुरआन ने अपने नियमों के माध्यम से मानव अधिकारों की स्थापना की। महिलाओं को वंश और सामाजिक प्रतिष्ठा से ऊपर मानते हुए उनके अधिकारों की घोषणा की, अनाथों और ग़रीबों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाई और आर्थिक प्रणाली में न्याय और बराबरी का आधार रखा।



यह एक प्रकार की सामाजिक क्रांति थी, जिसने मानवता को उस समय के अंधकार से बाहर निकाला। इतिहास के बड़े सुधारक भी उतनी व्यापक सामाजिक क्रांति नहीं ला सके जितनी क़ुरआन ने। इस तथ्य को इस्लामिक इतिहास और विश्व इतिहास दोनों में स्वीकार किया जाता है।

ज्ञान और तर्क के पक्षधर के रूप में क़ुरआन

क़ुरआन बार-बार इंसान से सोचने, तर्क करने और जांचने को कहता है। "अफ़ला यु़नज़रून" यानी "क्या वे नहीं सोचते?" यह सवाल तर्क के महत्व को दर्शाता है। क़ुरआन में वैज्ञानिक और तार्किक सोच की इतनी प्रोत्साहना मिली है कि कई आधुनिक वैज्ञानिक मानते हैं कि क़ुरआन ने विज्ञान के मूल सिद्धांतों के लिए प्रारंभिक आधार दिया। इस संदर्भ में, क़ुरआन ने किसी भी बात को अंधविश्वास या बिना सोच-समझ के स्वीकार नहीं किया। तर्क, परीक्षण और अनुभव की महत्ता क़ुरआन की शिक्षाओं में स्पष्ट है। उदाहरण के लिए, भ्रूणविज्ञान, ब्रह्मांडीय विस्तार, जल चक्र जैसे विषयों पर क़ुरआन के वैज्ञानिक संकेत आधुनिक विज्ञान के साथ संगत हैं।

यह एक तर्कसंगत प्रमाण है कि क़ुरआन एक दिव्य स्रोत से प्राप्त ज्ञान है, जिसे मानव ज्ञान के विकास के अनुरूप बनाया गया है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि 1400 साल पहले के सामाजिक और वैज्ञानिक संदर्भ में इन तथ्यों का ज्ञान असंभव था।

नैतिकता और न्याय का यथार्थवादी आधार

क़ुरआन ने नैतिकता और न्याय के आधार को स्पष्ट और व्यावहारिक बनाया है। इसमें नैतिकता सिर्फ़ धार्मिक रस्मों या कर्मकांडों तक सीमित नहीं, बल्कि मानव व्यवहार की समग्रता को देखा गया है। क़ुरआन के नैतिक सिद्धांतों में इंसाफ़, सहिष्णुता, दया और सामाजिक समरसता की बात की गई है। "ला इक़राह फ़िद्दीन" — धर्म में कोई ज़बरदस्ती नहीं, यह सिद्धांत मानवाधिकारों के आज के आधुनिक विचार के अनुरूप है। न्याय का पालन और सामाजिक बराबरी क़ुरआन के अनिवार्य हिस्से हैं। यह केवल एक आदर्श नहीं, बल्कि यथार्थवादी नियम है जो मज़बूत और टिकाऊ समाज का आधार बनता है। क़ुरआन ने आर्थिक वितरण, कर प्रणाली और संपत्ति अधिकारों को भी न्याय की दृष्टि से परिभाषित किया। यह सब आधुनिक मानवाधिकारों, आर्थिक न्याय और सामाजिक समावेशन के सिद्धांतों के पहले से स्थापित उदाहरण हैं।

क़ुरआन की आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टि

क़ुरआन इंसान की आंतरिक दुनिया, उसकी आत्मा, नीयत और व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालता है। यह बताता है कि बाहरी नियमों का पालन तभी सार्थक होता है जब इंसान की अंतरात्मा स्वच्छ और ईमानदार हो।

इस दृष्टि से क़ुरआन का दार्शनिक तत्त्व इस बात पर बल देता है कि इंसान का कर्म और उसकी सोच दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। "बल इन्नमा युआद्धीना अल्लाजीन आमानु"— अस्ली मज़बूती वही है जो आस्था और कर्म में हो। यह आध्यात्मिक मार्गदर्शन मनोविज्ञान और आधुनिक जीवन की तनावपूर्ण परिस्थितियों के समाधान के लिए भी बेहद प्रासंगिक है। आज के मानसिक स्वास्थ्य संकट में क़ुरआन की वह शिक्षा कि इंसान को धैर्य, शांति और भरोसे के साथ जीवन जीना चाहिए, बहुत प्रभावी हो सकती है।

क़ुरआन का सार्वकालिक और वैश्विक महत्व

क़ुरआन का संदेश केवल एक जाति, क्षेत्र या धर्म तक सीमित नहीं है। यह पूरी मानवता के लिए एक सार्वभौमिक गाइड है। इसकी शिक्षाएं न्याय, सहिष्णुता और समानता के सिद्धांतों पर आधारित हैं जो किसी भी युग या समाज में लागू की जा सकती हैं।

क़ुरआन का प्रभाव सिर्फ़ ऐतिहासिक या सांस्कृतिक नहीं, बल्कि दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से भी व्यापक और स्थायी है। आज भी यह इंसान को अज्ञानता से निकालकर ज्ञान और मार्गदर्शन की रोशनी में ले आने वाला आख़िरी और सबसे प्रभावशाली ग्रंथ है।

वर्तमान वैश्विक संदर्भ में, जहां सांप्रदायिकता, असहिष्णुता और हिंसा बढ़ रही है, क़ुरआन की यह शिक्षा कि मानवता एक परिवार है, अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। क़ुरआन की वह बात कि इंसान को अपने विभिन्न रंगों, भाषाओं और संस्कृतियों को समझना और सम्मान करना चाहिए, आज की वैश्विक शांति के लिए आधार है।

आधुनिक दुनिया में क़ुरआन की प्रासंगिकता

आज की दुनिया में तकनीकी प्रगति के साथ-साथ नैतिक पतन, सामाजिक विषमता और मानसिक तनाव की समस्या गहराती जा रही है। ऐसे में क़ुरआन की शिक्षाएं हमें यह समझाती हैं कि प्रगति तभी सार्थक है जब वह मानवता के भले के लिए हो।

क़ुरआन की शिक्षा "इंशाअल्लाह" यानी "अगर ख़ुदा चाहे" यह दर्शाती है कि मानव प्रयास के साथ ईश्वर की रहमत भी ज़रूरी है, और इसी संतुलन में जीवन की सफलता है। यह एक तार्किक समझ है जो इंसान को निराशा से बचाती है और धैर्य के साथ कठिनाइयों का सामना करने की प्रेरणा देती है।

इसके अलावा, क़ुरआन में आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय संतुलन की बातें ऐसी हैं जिनका महत्व आज तेज़ी से बढ़ रहा है।

एक तर्कसंगत एवं प्रासंगिक मार्गदर्शक

क़ुरआन ने इंसानियत को एक ऐसा समग्र दर्शन दिया है जो तर्क, विज्ञान, नैतिकता, आध्यात्म और सामाजिक न्याय को जोड़ता है। यह केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक जीवन पद्धति है जो हर युग, हर समाज और हर व्यक्ति के लिए प्रासंगिक है।

तार्किक दृष्टि से यह माना जा सकता है कि क़ुरआन की शिक्षाएं मानवीय समझ और नैतिक मूल्यों के आधार पर विश्व को एक बेहतर दिशा में ले जाने की क्षमता रखती हैं।

इसलिए, क़ुरआन का प्रभाव सिर्फ़ ऐतिहासिक या सांस्कृतिक नहीं, बल्कि दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से भी व्यापक और स्थायी है। आज भी यह इंसान को अज्ञानता से निकालकर ज्ञान और मार्गदर्शन की रोशनी में ले आने वाला आख़िरी और सबसे प्रभावशाली ग्रंथ है। ■■

कहो, "हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस चीज़ पर जो हमारी ओर उतरी और जो इबराहीम और इसमाईल और इसहाक़ और याक़ूब और उनकी संतान की ओर उतरी, और जो मूसा और ईसा को मिली, और जो सभी नबियों को उनके रब की ओर से प्रदान की गई। हम उनमें से किसी (नबी) के बीच अन्तर नहीं करते और हम केवल उसी के आज्ञाकारी हैं।"

(क़ुरआन, 2:136)

KANTI Monthly, New Delhi
JULY 2025
Posted on 20-21 June 2025
Published on 18 June 2025
Posted Delhi RMS Delhi-110006

RNI 53372/91
DL(S)-05/3147/2024-2026
LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
License No. U(SE)-73/2024-26
Total Pages with Cover: 52

